

अध्याय 1

रक्त और थैलासीमिया

थैलासीमिया ऐसे विकारों का समूह है जो शरीर द्वारा उच्च कोटि के रक्त की पर्याप्त मात्रा के उत्पादन में बाधा डालते हैं। जैसा कि हम देखेंगे मानव शरीर का जीवन रक्त पर निर्भर होता है, अतः ऐसी किसी भी समस्या को जो रक्त पर प्रभाव डालती है समझना आवश्यक है और यह भी कि शरीर उसका सामना कैसे करता है।

रक्त-जीवन सरिता

रक्त एक अत्यावश्यक तरल है जो शरीर के भागों और उपांगों तक पोषण पहुँचाता है और अनुपयोगी पदार्थों को वहाँ से बाहर लाता है। एक स्वस्थ वयस्क के शरीर में सामान्यतः 5 से 6 लीटर तक रक्त होता है जो शरीर के कुल भार का लगभग 7-8 प्रतिशत होता है। शरीर के प्रत्येक भाग में रक्त पहुँचाने का कार्य हृदय द्वारा किया जाता है। यह नलिकाओं के एक तंत्र के माध्यम से रक्त को पम्प करता है। इन नलिकाओं को रक्तवाहिनी कहा जाता है। यह रक्तवाहिनियाँ तीन प्रकार की होती हैं—1. धमनियाँ, 2. शिराएँ और 3. कोशिकाएँ। (देखें 1ए, 1बी)

इनमें से प्रत्येक का आकार और कार्य भिन्न होता है। इन रक्तवाहिनियों को सामूहिक रूप से संचारी तंत्र कहा जाता है। (देखें ए)

रक्त के कार्य : रक्त अनेक महत्वपूर्ण कार्य करता है।

1. **आक्सीजन लेकर जाना :** कार्य करने के लिए शरीर को जिन अनिवार्य पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, उनकी आपूर्ति तथा हानिकारक अनुपयोगी पदार्थ जिन्हें शरीर से बाहर निकालना आवश्यक होता है उनको बाहर निकालने के लिए शरीर रक्त पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए—सभी कोशिकाओं और प्राणियों को जीवित रहने और कार्य करने के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है। यह एक गैस है जो उसी वायु में पाई जाती है जिसमें हम सांस लेते हैं। रक्त फेफड़ों से आक्सीजन लेकर शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुँचाता है।

2. **कार्बनडाइआक्साइड लेकर आना :** CO_2 एक अन्य गैस है। यह कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न एक अनुपयोगी पदार्थ है। रक्त इसे वापस फेफड़ों में लेकर आता है। यहाँ से यह बाहर वायुमंडल में निकाल दी जाती है। रक्त अन्य अनुपयोगी पदार्थों जैसे यूरिया और यूरिक एसिड को गुर्दा और जिगर में ले जाता है और अन्ततः यह पदार्थ रक्त से पृथक होकर मल और मूत्र के माध्यम से शरीर से निकाल दिए जाते हैं। (देखें 1c)

3. रक्त विशेष रसायनों का वहन करता है जिन्हें हार्मोन कहते हैं। यह हार्मोन शरीर के महत्वपूर्ण तंत्रों के कार्य को नियन्त्रित करते हैं। जैसे अन्तःस्रावी तन्त्र, यौन तथा प्रजनन-तन्त्र।

4. रक्त शरीर के विभिन्न भागों तक पोषक तत्वों को पहुँचाता है जैसे—प्रोटीन, वसा और कार्बोज। यह पोषक तत्व भोजन पर पाचन तन्त्र की अभिक्रिया से उत्पन्न होते हैं। (देखें 1d, 1e)

5. अपने रोग-प्रतिरोधी तन्त्र की प्रतिरक्षा प्रणाली को कोशिकाओं के माध्यम से संक्रमण तथा रोगों से लड़ने में शरीर की सहायता करता है।

रक्त कहाँ बनता है : रक्त अस्थि मज्जा में बनता है। हड्डियों के अन्दर खोखली जगह में जो पदार्थ पाया जाता है, उसे अस्थि मज्जा कहते हैं। शिशुओं में रक्त कोशिकाएँ शरीर के अन्य ऊतकों में भी बनती हैं। वयस्कों में यह कोशिकाएँ केवल सिर, रीढ़, पसलियों और कूल्हे की हड्डियों में बनती हैं।

रक्त में क्या होता है : सम्पूर्ण रक्त दो घटकों को मिलाकर बनता है।

1. अकोशकीय घटक - इस भाग में कोशिकाएँ नहीं होतीं और
2. कोशकीय घटक - इस भाग में कोशिकाएँ होती हैं।

हमारा शरीर अरबों-खरबों अति सूक्ष्म इकाइयों से मिलकर बना है, जिन्हें कोशिका कहा जाता है। कोशिकाएँ इतनी सूक्ष्म होती

हैं कि इन्हें मात्र आंखों की सहायता से देख पाना सम्भव नहीं है। अधिकतर ऊतकों में यह कोशिकाएँ आपस में चिपकी रहती हैं पर रक्त में कोशिकाएँ मुक्त रूप से गतिशील रहती हैं। प्रत्येक कोशिका के तीन मुख्य भाग होते हैं, केन्द्रक या न्यूक्लियस। केन्द्र के चारों ओर पाया जाने वाला पदार्थ साइटोप्लाज्म, कोशिका के चारों ओर कोशिका झिल्ली (देखें 1g)। कोशिका के इन मुख्य भागों के अन्दर अनेकों अन्य संरचनाएँ भी पाई जाती हैं। प्रत्येक संरचना का एक विशेष कार्य होता है तथापि किसी भी कोशिका का एक बड़ा भाग/अंश पानी होता है जिसमें प्रोटीन, वसा, कार्बोज और न्यूक्लीय अम्ल, घुली अवस्था में परमाणु और अकार्बनिक आयन होते हैं। हमारी कोशिकाओं में सबसे अधिक कार्य प्रोटीन का होता है। मानव शरीर में प्रोटीन के 100000 विभिन्न प्रकार पाए जाते हैं। कोशिकाओं में प्रोटीन के कुछ कार्य इस प्रकार हैं।

- * अधिकतर कोशिकीय संरचनाओं के लिए निर्माण इकाई का कार्य
- * एनजाइम के रूप में कार्य - जीवन के लिए अनिवार्य रासायनिक क्रियाओं के लिए।

उत्प्रेरक का कार्य

- * कोशिकाओं की सतहों के बीच सम्प्रेषण के नियन्त्रण का कार्य। जीन अभिव्यक्ति का नियन्त्रण।
- * जीन पदार्थों की प्रतिकृति।

1. रक्त का अकोशकीय भाग - यह एक पीला सा तरल पदार्थ होता है जिसे प्लाज़्मा (Plasma) कहते हैं। सम्पूर्ण रक्त का 55 प्रतिशत प्लाज़्मा होता है। प्लाज़्मा में जल और लवणों के अतिरिक्त कुछ आवश्यक प्रोटीन भी होती है जिन्हें यह शरीर के विभिन्न भागों तक ले जाता है जैसे कि *एलब्यूमिन-यह रक्त में पाई जाने वाली मुख्य प्रोटीन है। * ग्लोब्युलिन और गामा ग्लोब्युलिन- इसमें हजारों रोग प्रतिकारक (antibiotics) होते हैं जिनसे संक्रमण और रोगों का मुकाबला करने में सहायता मिलती है। * फाइब्रिनोजन-यह रक्त का थक्का जमाने में सहायता करता है और चोट लगने के बाद शरीर से रक्त के बहाव को रोकता है।

2. रक्त का कोशकीय भाग - इसमें तीन अलग-अलग प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं। लाल रक्त कोशिकाएँ (erythrocyts), सफेद रक्त कोशिकाएँ या ल्यूकोसाइट्स और प्लेटलेट्स या थ्रम्बोसाइट्स (देखें 1h)

* **लाल रक्त कोशिकाएँ या Erythrocyts या (R.B.G.)** - शरीर में प्रति घन मि.मी. 45,00,000-50,00,000 घन मि.मी. लाल रक्त कण होते हैं जो रक्त की कुल मात्रा का लगभग 45% हैं। लाल रक्त कोशिकाओं की औसत जीवन अवधि 100-120 दिन होती है जो रक्त की किसी भी अन्य कोशिका को जीवन अवधि से अधिक है। लाल रक्त कोशिका का मुख्य कार्य शरीर के विभिन्न भागों तक आक्सीजन ले जाना है। यह आक्सीजन को हीमोग्लोबिन नामक पदार्थ से संयुक्त करके शरीर की प्रत्येक कोशिका तक ले जाता है। लाल रक्त कोशिका में हीमोग्लोबिन के अनेकों अणु होते हैं जिनकी संख्या 300 मिलियन तक होती है। इनकी इतनी अधिक (30 करोड़) संख्या के कारण रक्त का रंग लाल दिखाई देता है। वास्तव में RBCs में हीमोग्लोबिन की मात्रा ही इतनी अधिक होती है कि इसमें अन्य कोशिकाओं में पाए जाने वाले कुछ अवयव नहीं होते जैसे कि RBC में केन्द्रक (न्यूक्लियस) नहीं होता। (देखें 1h)

कोशिका झिल्ली या RBC की बाहरी परत साबुन के बुलबुले की तरह बहुत लचीली होती है। इससे यह कोशिका टूटे बिना किसी भी दिशा में मुड़ सकती है। विशेषतः जहाँ आक्सीजन की आवश्यकता होती है। वहाँ आक्सीजन पहुँचाने के लिए जब यह अत्यन्त महीन रक्त नलिकाओं में से होकर गुजरती है। RBC में कार्बोनिक एनहाइड्रेज नामक एक एन्जाइम भी काफी मात्रा में होता है जो कार्बनडाइ आक्साइड को ऊतकों से निकालकर फेफड़ों में ले जाने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

2. श्वेत रक्त कोशिकाएँ या ल्यूकोसाइट्स - यह कुल रक्त का मात्र 1% होती है जो संक्रामक बैक्टीरिया, वाइरस, फंगस और परजीवियों से रक्षा करने में शरीर की प्राथमिक रक्षा प्रणाली के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। श्वेत रक्त कोशिकाएँ विविध प्रकार की कोशिकाओं का एक समूह है। इनमें से प्रत्येक अपनी तरह से संक्रमण और ऊतक क्षति का मुकाबला करने और उसे रोकने में योगदान देती हैं। इनका वर्गीकरण प्रायः इनकी आकृति मूलक विशिष्टता के अनुसार किया जाता है।

3. ग्रैनुलोसाइट्स या पालीमारफ न्यूक्लीय कोशिकाएँ - इनकी दानेदार बनावट और खंडित केन्द्रकों के कारण इनका यह नाम पड़ा है। प्रयोगशाला में अभिरंजन के बाद इनके रंग के अनुसार इनका उपविभाजन किया जाता है। न्यूट्रोफिल (देखें 1i) (कुल श्वेत कोशिकाओं के 72%) अभिरंजन के बाद इनका रंग नीला हो जाता है। इमोसिनोफिलस (देखें 1j) (कुल श्वेत कोशिकाओं के 1.5%) अभिरंजन के बाद इनका रंग लाल हो जाता है। बेसोफिलस (देखें 1k) (कुल श्वेत कोशिकाओं के 0.5%) अभिरंजन के बाद इनका रंग बैंगनी हो जाता है।

अन्य श्वेत कोशिकाएँ

मोनो साइट्स (देखें 11) (कुल श्वेत कोशिकाओं का 4%) - लिम्फोसाइट्स (देखें 1h) (कुल श्वेत कोशिकाओं का 24%) श्वेत रक्त कोशिकाएँ आकार में लाल रक्त कोशिकाओं से बड़ी होती हैं किन्तु रक्त में इनकी संख्या काफी कम होती है। लगभग 7000 घन मि.मी. होती है और इनकी जीवन अवधि काफी कम होती है। मात्र 18 से 36 घंटे।

प्लेटलेट्स की रक्त में केवल एक ही महत्वपूर्ण भूमिका है। यह क्षतिग्रस्त रक्त वाहिनी से होने वाले रक्त के बहाव को रोकने के लिए थक्का जमाने की प्रक्रिया (स्कंदन) शुरू करते हैं। प्लेटलेट मानव शरीर में सबसे छोटे आकार की कोशिका है। (देखें 1h) रक्त में प्रति घन मि.मी. लगभग 200000 प्लेटलेट होते हैं और इनकी जीवन अवधि 97-100 दिन होती है। सफेद रक्त कोशिका और प्लेटलेट्स दोनों ही में (लाल रक्त कोशिकाओं में नहीं) एक केन्द्रीय भाग होता है जिसे केन्द्रक (न्यूक्लियस) कहते हैं और एक बाहरी भाग होता है जिसे साइटोप्लाज्म कहते हैं।

तीनों प्रकार की रक्त कोशिकाएँ—लाल रक्त कोशिकाएँ, श्वेत रक्त कोशिकाएँ और प्लेटलेट्स। एक ही आरम्भक (पूर्ववर्ती) कोशिका से विकसित होते हैं जिसे हीमोपोयटिक स्टेम सेल (रक्तोपादक वंशकोशिका) कहा जाता है। इन वंश कोशिकाओं की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती है। केवल चार सप्ताह में दस वंश कोशिकाएँ 30 ट्रिलियन, लाल रक्त कोशिकाएँ, 30 बिलियन श्वेत रक्त कोशिकाएँ और 1.2 ट्रिलियन प्लेटलेट्स बना देती है। यह संख्या शरीर की प्रत्येक रक्त कोशिका को बदल देने के लिए पर्याप्त है।

रक्त वर्ग (ब्लड ग्रुप) - ब्लड ग्रुप मुख्य रूप से चार होते हैं—ए, बी, एबी और ओ। इन्हें इनकी प्रोटीन के प्रकार से पहचाना जाता है जिसे मार्कर या एन्टीजन भी कहा जाता है। यह प्रोटीन RBC की सतह पर होती है। किसी भी व्यक्ति का रक्त ए, बी, एबी और ओ इन चार मुख्य रक्त वर्गों में से किसी एक वर्ग का होता है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की लाल रक्त कोशिकाएँ इनमें से किसी एक ही वर्ग की होती हैं।

रक्त-वर्ग 'ए' A - इसमें लाल रक्त कोशिकाओं की सतह पर A मार्कर होता है।

रक्त-वर्ग 'बी' - इसमें लाल रक्त कोशिकाओं की सतह पर 'बी' मार्कर होता है।

रक्त-वर्ग 'एबी' - इसमें लाल रक्त कोशिकाओं की सतह पर 'एबी' और 'बी' दोनों मार्कर होते हैं।

रक्त-वर्ग 'ओ' - इसमें लाल रक्त कोशिकाओं की सतह पर 'ए' और 'बी' दोनों में से कोई मार्कर नहीं होता।

बीस से अधिक प्रकार की अन्य लाल रक्त कोशिकाओं की खोज की जा चुकी है किन्तु ऊपर जिनका वर्णन किया गया है वही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और सामान्यतः उन्हीं के विषय में लोग सबसे ज्यादा जानते हैं। किसी भी व्यक्ति को अपना रक्त वर्ग जानने की आवश्यकता क्यों पड़ती है। इसके कई कारण हैं—सबसे महत्वपूर्ण कारण है जब किसी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति से रक्त लेने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् जब रक्ताधान की आवश्यकता होती है।

रक्ताधान में (ब्लड ट्रांसफ्यूजन) रक्तदाता के रक्त और रक्त लेने वाले व्यक्ति के रक्त का सावधानीपूर्वक मिलान किया जाना चाहिए ताकि रक्त लेने वाले व्यक्ति का शरीर रक्तदाता के रक्त को अस्वीकार न कर दे। रक्त लेने वाले व्यक्ति के रक्त का रक्त देने वाले व्यक्ति के रक्त वर्ग और 'रीसस एन्टीजन' से मिलान ब्लड बैंक की प्रयोगशाला में किया जाता है। इस प्रक्रिया को 'क्रास-मैचिंग' या 'कम्पैटिबिलिटी टेस्ट' कहा जाता है। यदि रक्त-वर्ग और 'रीसस एन्टीजन' समान नहीं होंगे तो रक्त लेने वाले व्यक्ति का शरीर दिए रक्त के विजातीय मानकर उसे नष्ट करने का प्रयत्न करेगा। शरीर द्वारा विजातीय-अनमेल रक्त का मुकाबला करने के प्रयास की परिणति गम्भीर रुग्णता और यदि शीघ्रतापूर्वक निदान और उपचार नहीं किया गया तो मृत्यु भी हो सकती है।

रक्त से सम्बन्धित रोग—रक्त के विकार कई रोगों को जन्म देते हैं। यह विकार रक्त के विकारग्रस्त अवयव के अनुसार वर्गीकृत किए जाते हैं। ये रोग लाल रक्त कोशिकाओं के रोग, श्वेत रक्त कोशिकाओं के रोग और खून के जमान से सम्बन्धित रोग हैं।

लाल रक्त कोशिकाओं के रोगों में थैलिसीमिया शामिल है। यह लाल रक्त कोशिकाओं का सर्वाधिक सामान्य रोग रक्ताल्पता (Aneimia) है। यह एक ऐसा रोग है जिसमें शरीर में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या असामान्य रूप से कम होती है या हीमोग्लोबिन का स्तर कम होता है। रक्ताल्पता का सामान्य लक्षण थकान है। क्योंकि इस दशा में रक्त शरीर के सभी भागों में पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन पहुँचाने में असमर्थ होता है। रक्ताल्पता का सबसे सामान्य प्रकार है लोहे की कमी से होने वाली रक्ताल्पता। इसमें अस्थि-मज्जा में लाल रक्त कोशिकाओं का उत्पादन पर्याप्त संख्या में नहीं होता। इस प्रकार की रक्ताल्पता के रोगी का उपचार केवल लौहपूरक (आयरन सप्लीमेन्ट) लेने से ही हो जाता है। रक्ताल्पता के अन्य प्रकार यद्यपि अधिकांश गम्भीर हैं। उदाहरण के लिए हीमोलिटिक अनीमिया में लाल रक्त कोशिकाओं को शरीर ही बहुत तेजी से नष्ट कर देता है। थैलिसीमिया मेजर में लाल रक्त कोशिकाएँ लगभग बनते ही नष्ट कर दी जाती हैं और अस्थि-मज्जा उनका स्थान लेने के लिए पर्याप्त संख्या में लाल रक्त कोशिकाओं का उत्पादन नहीं कर पाती। यह रोग वंशानुगत होते हैं अर्थात् माता पिता से उनके बच्चों में आते हैं और अत्यन्त तीव्र होते हैं। कई वर्षों पहले तक यह माना जाता था कि इन रोगों का उपचार सम्भव नहीं है और अन्ततः अल्पायु में ही रोगी की मृत्यु हो जाएगी तथापि अब हम यह जानते हैं कि उचित उपचार के द्वारा रोगी

सन्तोषजनक रूप से पूरा जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

थैलासीमिया मेजर - थैलासीमिया मेजर जिसे भूमध्य सागरीय रक्ताल्पता (मैडिटेरेनियन अनीमिया) या कूलीस अनीमिया भी कहा जाता है के विषय में पहले यह माना जाता था कि यह केवल भूमध्य सागर के आसपास के क्षेत्रों तक ही सीमित है इसीलिए इसका नाम मैडिटेरेनियन अनीमिया या थैलासीमिया (थैलेसा-अनीमिया) पड़ा। यह दूसरा नाम ग्रीक भाषा के शब्द थैलासा से निकला है जिसका अर्थ होता है समुद्र अर्थात् समुद्री क्षेत्रों में होने वाला अनीमिया। 1927 ई. में अमरीकी बाल रोग विशेषज्ञ थॉमस कूली ने डा. पर्ल ली के साथ मिलकर वूटालियन क्षेत्र के रोगियों का अध्ययन करने के बाद पहले पहल इस रोग से सम्बन्धित विशिष्ट लक्षणों का वर्णन किया और इनका विवरण उपलब्ध कराया इसीलिए इस रोग को कूलीस अनीमिया भी कहते हैं। थैलासीमिया मेजर जोकि थैलासीमिया रोगों में सबसे गम्भीर है। इस पुस्तक का मुख्य विषय है। यह रोग विश्व के शीतोष्ण क्षेत्रों में सामान्यतः पाया जाता है तथापि लोगों के दूसरे स्थानों पर जाकर बसने के कारण थैलासीमिया विश्व के उन स्थानों पर भी पहुँच गया है, जहाँ यह सामान्यतः नहीं पाया जाता था। विशेषतः ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा और जर्मनी जैसे उत्तरी देशों में अब थैलासीमिया के रोगियों की एक बड़ी संख्या पाई जाती है तथापि पूरे विश्व में जनसंख्या के स्थानान्तरण से यह विश्व के उन भागों में भी पहुँच गया है जहाँ यह सामान्यतः नहीं पाया जाता था। दक्षिणवर्ती यूरोप और एशिया से लोगों के प्रवास के कारण विशेषतः ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा और जर्मनी जैसे उत्तरवर्ती देशों में इन रोगियों की अच्छी-खासी संख्या है।

अध्याय 2

आनुवंशिकी और थैलासीमिया

थैलासीमिया एक वंशागत जेनेटिक रोग है अर्थात् यह जीन के माध्यम से माता-पिता से सन्तानों में आता है। यह रक्त, वायु या जल के माध्यम से या रोगी के साथ शारीरिक अथवा यौन संबंध से नहीं फैलता और न ही यह पोषण की कमी अथवा किसी रोग से उत्पन्न होता है।

जीन

जीन किसी भी जीव का अपना एक विशेष ब्लू प्रिंट होते हैं जो जीवनपर्यंत उसकी वृद्धि और विकास के नियंत्रण के लिए आवश्यक जैविक सूचना उपलब्ध कराते हैं। ये वंशागति की जैविक इकाई होते हैं। प्रत्येक जीन का मुख्य अवयव एक रासायनिक पदार्थ होता है जिसे डिऑक्सीराइबोन्यूक्लीक अमल या DNA कहते हैं।

DNA (2a देखें) - DNA एक सीढ़ी जैसी संरचना होती है जिसमें दो समान्तर पट्टियों के बीच कई पायदान जैसे लगे होते हैं। प्रत्येक पायदान दो रसायनों का बना होता है, जिन्हें आधार कहा जाता है। ये परस्पर एक जोड़े के रूप में होते हैं। इनमें से प्रत्येक आधार को भिन्न अक्षर के द्वारा दर्शाया जाता है। ये अक्षर हैं C, G, A और T—C साइटोसाइन के लिए, G गुआनिन के लिए, A एडिनिन के लिए और T थायमिन के लिए प्रयुक्त होता है। ये चारों आधार-युग्म हमेशा एक जैविक पदार्थों के निर्माण के लिए उत्तरदायी होती हैं। मानव शरीर में अनेकों जटिल जैविक क्रियाओं को पूरा करने के लिए एक बड़ी संख्या में जीनों की आवश्यकता होती है। ये जीन कोशिका में DNA के एक अत्यधिक लंबे खंड पर परस्पर जुड़े रहते हैं, जिसे क्रोमोसोम (गुणसूत्र) कहते हैं।

प्रत्येक मानव कोशिका में (शुक्राणु/डिंब के अतिरिक्त) माता और पिता से प्राप्त एक-एक क्रोमोसोम में से प्रत्येक की दो प्रतियाँ होती हैं।

अलग-अलग प्रकार के जीवों में क्रोमोसोम की संख्या अलग-अलग होती है। मनुष्यों में क्रोमोसोम के 23 जोड़े या कुल 46 क्रोमोसोम (देखें 2c) होते हैं। स्त्रियों और पुरुषों दोनों में बाईस जोड़े या कुल 44 क्रोमोसोम समान होते हैं जिन्हें आटोसोम कहते हैं जबकि एक जोड़ा अर्थात् दो लिंग सूत्र (सेक्स क्रोमोसोम) लिंग निर्धारित करते हैं प्रत्येक मनुष्य में क्रोमोसोम के एक जोड़े में एक क्रोमोसोम अपनी माता का होता है और दूसरा अपने पिता का।

वर्षों के अनुसंधान के बाद ऐसे अनेकों जीनों की पहचान संभव हो पाई है जो यदि प्रभावित हो जाएँ तो विभिन्न रोग उत्पन्न कर सकते हैं, जिनकी आनुवंशिक रोग कहा जाता है।

आनुवंशिक रोगों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **गुणसूत्र विकार (क्रोमोसोम एबनॉर्मलिटी)** - ये विकार पूरे क्रोमोसोमों या उसके अंशों की अनुपस्थिति, समगुणसूत्रों की उपस्थिति या स्थानांतरण के कारण उत्पन्न होते हैं।

2. **एकल-जीन विकार** - ये विकार एक जीन के स्तर हुए अत्परिवर्तन (म्यूटेशन) के कारण उत्पन्न होते हैं। इनमें इस जीन विशेष के द्वारा नियंत्रित प्रोटीन में परिवर्तन आ जाता है अथवा उसका बनना आंशिक या पूर्ण रूप से रुक जाता है।

3. **बहु-उपादानिय विकार (मल्टीफैक्टोरियल)** - ये विकार कई जीनों में हुए उत्परिवर्तनों (म्यूटेशन) के साथ-साथ प्रायः पर्यावरण-संबंधी कारणों से उत्पन्न होते हैं अर्थात् इन विकारों की उत्पत्ति के लिए कई कारणों की एक साथ उपस्थिति आवश्यक होती है।

4. **माइटोकॉण्ड्रियल विकार (सूत्रकणिका विकार)** - ये विकार सूत्रकणिकाओं के साइटोप्लाज्म में स्थित उन गुणसूत्रीय डीएनए में आए उत्परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होते हैं। सूत्र कणिकाएँ की कोशिकाओं का ऊर्जा-केन्द्र (देखें 2d) कहा जाता है।

थैलासीमिया एक एकल-जीन विकार (सिंगल जीन डिसऑर्डर) है। एकल-जीन विकार माता-पिता से बच्चों में चार बुनियादी पैटर्नों में से एक पैटर्न के द्वारा अंतरित होते हैं। इन पैटर्नों का विवरण 1865 में पहली बार ग्रेगर मेंडल नामक एक मौक द्वारा किया गया।

- (1) अलिंग सूत्र प्रभावी (ऑटोसोमल डोमिनेंट)
- (2) अलिंग सूत्र अप्रभावी (ऑटोसोमल रिसेसिव)
- (3) एक्स-संबंधित प्रभावी (एक्स-लिंकड डोमिनेन्ट)
- (4) एक्स-संबंधित अप्रभावी (एक्स-लिंकड रिसेसिव)

इस शब्दावली का प्रयोग आनुवंशिकी में यह समझाने के लिए किया जाता है कि जीन संबंधी विकार (जीनी प्ररूप) के कारण

उत्पन्न रोग लक्षण (लक्षण प्ररूप) क्या (1) मात्र एक जनक (माता अथवा पिता) से वंशागत होते हैं (ऑटोसोमल डोमिनेन्ट) या (2) माता और पिता दोनों के योगदान से (ऑटोसोमल रिसेसिव) या (3) किसी एक जनक (माता अथवा पिता) के लिंग-निर्धारक गुणसूत्र में विकार (एक्स-लिंकड डोमिनेन्ट) के कारण अथवा (4) माता और पिता दोनों के लिंग-निर्धारक गुणसूत्र में विकार के कारण वंशागत होते हैं।

थैलासीमिया एक एकल-जीन विकार है जो वंशानुगति के अलिंग-सूत्र अप्रभावी पैटर्न द्वारा माता-पिता से संतान में अंतरित होता है।

एक अलिंग-सूत्री विकार स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है क्योंकि विकार केवल एक लिंग-सूत्र में होता है—अर्थात् जो लिंग-सूत्र बच्चे के लिंग-निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं होता।

अप्रभावी (रिसेसिव) का अर्थ है कि संतान में थैलासीमिया मेजर रोग के तीव्र लक्षण उत्पन्न होने के लिए माता और पिता दोनों ही में विकृत जीन का वंशागत होना आवश्यक है।

जिन व्यक्तियों में माता और पिता दोनों ही से विकृत जीन वंशानुगत होते हैं उन्हें समयुग्मज कहा जाता है—B- थैलासीमिया के संदर्भ में इन्हें समयुग्मजी B- थैलासीमिया से प्रभावित रोगी कहा जाता है। इन्हें थैलासीमिया मेजर, भूमध्यसागरीय रक्ताल्पता (मेडिटरेनियन एनीमिया), अथवा क्यूलीज़ एनीमिया से प्रभावित रोगी भी कहा जा सकता है। इन रोगियों में समय के साथ इस रोग से संबंधित सभी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

जिन व्यक्तियों में एक जनक (माता अथवा पिता) से एक सामान्य जीन और दूसरे जनक (माता अथवा पिता) से एक विकृत जीन वंशागत होता है उन्हें विषम-युग्मज कहा जाता है। B- थैलासीमिया के संदर्भ में इन्हें विषम-युग्मजी B- थैलासीमिया से प्रभावित रोगी कहा जाता है। इन्हें थैलासीमिया विशेषक (ट्रेट) का वाहक या थैलासीमिया माइनर से प्रभावित रोगी भी कहा जाता है। ऐसे व्यक्तियों में रोग के लक्षण उत्पन्न नहीं होते परन्तु ये विकृत जीन को अपनी संतान में अंतरित कर सकते हैं।

थैलासीमिया मेजर का कारण—लाल रक्त कोशिकाओं का विकार

जैसा कि प्रथम अध्याय में बताया गया है कि थैलासीमिया रक्त का एक वंशागत आनुवंशिक रोग है और अधिक स्पष्टता से कहा जाए तो यह लाल रक्त कोशिकाओं के हीमोग्लोबिन अणुओं के संश्लेषण में असामान्यताओं का परिणाम होता है।

हीमोग्लोबिन और लौह

हीमोग्लोबिन एक विशेष प्रकार का यौगिक अणु है। यह एक प्रोटीन है जो लाल रक्त कोशिकाओं में पाई जाती है। इसका मुख्य कार्य शरीर के उन अंगों तक ऑक्सीजन पहुँचाना है जहाँ इसकी आवश्यकता होती है।

प्रत्येक लाल रक्त कोशिका में हीमोग्लोबिन के 3 करोड़ अणु होते हैं। हीमोग्लोबिन के अणु के दो भाग होते हैं : (1) एक प्रोटीन जिसे ग्लोबिन कहा जाता है। यह प्रोटीन एक जैसे दो जोड़ों में व्यवस्थित चार प्रोटीन शृंखलाओं से बनती है (देखें 2e+f)

ये शृंखलाएँ कई प्रकार की होती हैं— a शृंखलाएँ, a_2 शृंखलाएँ, और a शृंखलाओं से इतर B_2, r_2, E_2, Z_2, E_2 शृंखलाएँ। ये भी समान जोड़ों में व्यवस्थित होती हैं जैसे $a_2r_2, a_2B_2, a_2E_2, a_2Z_2$ और a_2E_2

(2) हीम लौह - यह छल्ले के आकार की एक संरचना होती है जिसका संश्लेषण सूत्रकणिका (माइटोकॉन्ड्रियोन) और साइटोसोल में होता है। हीम-लौह में उपस्थित लौह अणु की सहायता से पूरे शरीर में ऑक्सीजन पहुँचाना संभव हो जाता है, क्योंकि लौह बड़ी सरलता से ऑक्सीजन से संयुक्त और मुक्त हो सकता है और यही बात इसे ऊतकों और कोशिकाओं तक ऑक्सीजन पहुँचाने का एक श्रेष्ठ साधन बनाती है।

सामान्य वयस्कों के शरीर में 4 ग्रा. लौह होता है। इसका 75 प्रतिशत अर्थात् लगभग 3 ग्रा. हीमोग्लोबिन के संश्लेषण में प्रयुक्त होता है।

हीमोग्लोबिन (Hb) का उत्पादन और संश्लेषण कई जीनों के द्वारा नियंत्रित होता है। गुणसूत्र 16 पर a जीन, गुणसूत्र 11 पर B, r और E जीन होते हैं। चार जीन a शृंखलाओं के लिए कोड करते हैं और दो जीन B शृंखलाओं के लिए (देखें 2g)। a और B शृंखलाओं के संश्लेषण के नियंत्रण के लिए उत्तरदायी जीनों की संख्या का ध्यान किए बिना इन दोनों शृंखलाओं का बिल्कुल समान मात्रा में निर्माण होता है। भिन्न शृंखलाओं के मेल से भिन्न-भिन्न प्रकार के हीमोग्लोबिन बनते हैं तथा जीवन की प्रत्येक अवस्था में एक भिन्न प्रकार का हीमोग्लोबिन बनता है (देखें 2h)। जैसा कि नीचे दर्शाया गया है :

'a' शृंखला	नान a शृंखला	Hb	निर्मित हीमोग्लोबिन	जीवन की अवस्था
		का नाम		
a	E	a_2e_2	Hb गाइर 1	गर्भावस्था के प्रथम आठ सप्ताह
a	e	a_2e_2	Hb गाइर 2	गर्भावस्था के प्रथम आठ सप्ताह
a	r	a_2r_2	Hb पोर्टलैंड	गर्भावस्था के प्रथम सप्ताह-हाइड्राप्स फीटैलिस में समयुग्मजी a थैलासीमिया के कारण

a	r	a_2r_2	HbF	गर्भावस्था के 6 सप्ताहों से पूर्ण होने तक प्रभावी Hb <1% सामान्य वयस्कों में
a	B	a_2B_2	HbA	गर्भावस्था के 8 सप्ताहों से सामान्य भ्रूणों में 10 प्रतिशत तक सामान्य वयस्कों में प्रभावी Hb
a	Z	a_2Z_2	HbA ₂	Hb से संबंधित माइनर Hb HbA का $1\% < 3\%$ सामान्य वयस्कों में

ग्लोबिन का संश्लेषण नियंत्रित करने वाले जीन

B- थैलासीमिया मेजर उत्पन्न करने वाला सही दोष हीमोग्लोबिन के ग्लोबिन भाग में B-शृंखलाओं के उत्पादन को नियंत्रित करने वाले जीन में होता है। इस जीन-संबंधी दोष के कारण B-शृंखलाओं का निर्माण या तो बिल्कुल ही नहीं होता या बहुत कम मात्रा में होता है जिससे लाल रक्त कोशिकाओं में केवल एक प्रकार की शृंखलाएँ-aशृंखलाएँ ही रह जाती हैं। यह असंतुलन सामान्य हीमोग्लोबिन के उत्पादन में बाधा डालता है, जिसके लिए A और B दोनों प्रकार की शृंखलाओं की उपस्थिति आवश्यक होती है। परिणामस्वरूप लाल रक्त कोशिकाओं का प्रभावी उत्पादन, प्रक्रिया को एरिथ्रोपोएसिस कहते हैं (ग्रीक भाषा में एरिथ्रा का अर्थ लाल कोशिकाएँ और पोएसिस का अर्थ उत्पादन होता है), गंभीर रूप से प्रभावित हो जाती हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि हीमोग्लोबिन की B-शृंखलाओं के उत्पादन के लिए उत्तरदायी जीन में दोष आधार-युग्म में एकल परिवर्तनों (पॉइंटम्यूटेशन) या जीन के खंडों के विलोक के कारण उत्पन्न होते हैं। B- ग्लोबिन जीन की सामान्य क्रियाओं को प्रभावित करने वाले 200 विभिन्न उत्परिवर्तनों की पहचान हो चुकी है।

उत्परिवर्तनों के प्रकार के अनुसार ग्लोबिन का संश्लेषण अधिक या कम प्रभावित हो सकता है जिसके कारण सामान्य से लेकर अधिक तीव्र प्रकार का थैलासीमिया तक उत्पन्न हो सकता है। कुछ उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) B-शृंखलाओं के उत्पादन पर सामान्य (B⁺⁺) से लेकर महत्वपूर्ण (B⁺) प्रभाव तक डालते हैं जबकि अन्य (B⁰) इनका उत्पादन वस्तुतः बिल्कुल रोक देते हैं।

अतः जो व्यक्ति अपने दोनों जनकों (माता और पिता दोनों) से B⁺ जीन वंशागति से प्राप्त करते हैं उनमें सामान्य प्रकार का थैलासीमिया उत्पन्न होने की संभावना होती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने माता और पिता दोनों से B⁰ जीन वंशागति से प्राप्त करते हैं उनमें B-ग्लोबिन का लगभग संपूर्णतः अभाव होता है और उनमें सबसे तीव्र प्रकार का थैलासीमिया होने की सबसे अधिक संभावना होती है।

जिनमें मिश्रित जीन वंशागत होते हैं उनमें लक्षण-प्ररूप (फीनो-टाइप) जैसे कि B⁺B⁺⁺ या B⁺B⁰ या B⁺⁺B⁰ के विषय में पूर्वानुमान यद्यपि आसान नहीं है।

B- थैलासीमिया के संदर्भ में संभावनाओं के उदाहरण हैं :

B⁰ × B⁰ थैलासीमिया मेजर

B⁺ × B⁺ थैलासीमिया मेजर

B⁺⁺ × B⁺⁺ थैलासीमिया इन्टरमीडिया (रोग का साधारण प्रकार)

B⁺ × B⁺⁺ थैलासीमिया मेजर/थैलासीमिया इन्टरमीडिया

जीनी प्ररूप/लक्षण-प्ररूप

यह निष्कर्ष कि विशिष्ट जीनी उत्परिवर्तनों (जीन-प्ररूपों) और रोग के लक्षणों की तीव्रता (लक्षण-प्ररूप) का परस्पर संबंध हो सकता है, जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, अत्यधिक महत्वपूर्ण है। थैलासीमिया से संबंधित तीन विभिन्न जीनों (B⁺⁺, B⁺ और B⁰) के विविध संयोजन रोग की तीव्रता की विभिन्न कोटियों में परिणत हो सकते हैं। और इसके साथ ही विभिन्न देशों में वहाँ के अपने विशिष्ट जीन संयोजन और सर्वाधिक सामान्य उत्परिवर्तन भी होते हैं।

तीव्र (0), कम तीव्र (+) और साधारण उत्परिवर्तनों (++) के उदाहरण नीचे दर्शाए गए हैं।

B ⁺⁺ उत्परिवर्तन	B ⁺ उत्परिवर्तन	B ⁰ उत्परिवर्तन
-101, -87, -88, -28	IVS 1-110	IVS 1-1
IVS 1-106	IVS 11-745	IVS 11-1
IVS 1-5	IVS 1-(-25)	
	C-39	

कुछ अन्य जीन दशाएँ भी रोग की तीव्रता को कम कर सकती हैं, जैसे कि :

(1) a शृंखलाओं का संश्लेषण कम होना—उदाहरण के लिए थैलासीमिया मेजर के कुछ रोगियों में कोई ऐसा उत्परिवर्तन वंशागति से आ सकता है जो a शृंखलाओं के संश्लेषण को कम कर दे और B शृंखलाओं के संश्लेषण को कम करने वाला उत्परिवर्तन भी मौजूद हो तो a और B शृंखलाओं के बीच का असंतुलन कम हो जाता है और इस प्रकार रोग की तीव्रता कम हो जाती है।

(2) **r शृंखलाओं का संश्लेषण बढ़ना**—सामान्य वयस्क के रक्त में लगभग 1% फटिल हीमोग्लोबिन HbF होता है जो r शृंखलाओं के एक जोड़े (a_2r_2) से बना होता है। थैलासीमिया के रोगियों में r शृंखलाओं का उत्पादन बढ़ जाता है क्योंकि शरीर HbF का उत्पादन बढ़ाकर HbA के उत्पादन के अभाव को पूरा करने का प्रयास करता है। यह वृद्धि यद्यपि HbA के कार्य का स्थान लेने के लिए पर्याप्त नहीं होती। हालांकि थैलासीमिया के कुछ रोगियों में हेरेडिटरी परलिटस्टेंस ऑफ फीटल हीमोग्लोबिन या HPFH नामक रोग वंशागति से आ सकता है जिसमें HbF के स्तर और भी अधिक पाए जाते हैं और पूरी वयस्क अवस्था के दौरान ये ऐसे ही बने रहते हैं। रोगियों में r-ग्लोबिन जीन के उद्दीपन से संबंधित उत्परिवर्तन (जैसे कि rXmn पॉलीमॉर्फिज्म) या अन्य दशाएँ जैसे कि aB- थैलासीमिया भी वंशागति से आ सकते हैं जिनके कारण वयस्कों में फीटल हीमोग्लोबिन के संश्लेषण में वृद्धि (5-20 प्रतिशत तक) भी हो सकती है और इस प्रकार ग्लोबिन शृंखलाओं के असंतुलन में कमी आने से थैलासीमिया की तीव्रता भी कम हो जाती है।

थैलासीमिया का रोगात्मक शरीर क्रिया विज्ञान

B शृंखलाओं का अभाव और a शृंखलाओं की अधिकता गर्भावस्था के दौरान भ्रूण के रक्त में एक विशेष प्रकार का हीमोग्लोबिन होता है जिसे फीटल हीमोग्लोबिन (HbF) कहते हैं, जैसा कि पहले बताया जा चुका है यह a शृंखलाओं के एक जोड़े और r शृंखलाओं के एक जोड़े (a_2r_2) से मिलकर बना होता है। यह हीमोग्लोबिन पूरे शरीर में ऑक्सीजन पहुँचाने का कार्य उसी प्रकार करता है जैसे कि सामान्य हीमोग्लोबिन बड़े बच्चों और वयस्कों में करता है। जन्म के पश्चात् फीटल हीमोग्लोबिन HbF सामान्यतः जीवन के प्रथम छह महीनों तक कार्य करता रहता है। बाद में धीरे एडल्ट हीमोग्लोबिन (HbA) इसका स्थान ले लेता है जो दो a शृंखलाओं और दो B- शृंखलाओं (a_2B_2) से मिलकर बना होता है।

थैलासीमिया मेजर में B शृंखलाओं का उत्पादन नहीं होता या बहुत ही कम मात्रा में होता है जिससे सामान्य वयस्क हीमोग्लोबिन के संश्लेषण में बाधा आती है और लाल रक्त कोशिकाओं की ऑक्सीजन वहन करने की क्षमता को अत्यधिक क्षति पहुँचती है। शिशु का शरीर इसकी प्रतिक्रिया में भ्रूण हीमोग्लोबिन बनाना जारी रखता है। हालाँकि शिशु के बढ़ते हुए शरीर की आवश्यकता को पूरा करने के लिए और वयस्क हीमोग्लोबिन a_2B_2 के ऑक्सीजन वहन करने के कार्य का स्थान लेने के लिए पर्याप्त मात्रा में इसका उत्पादन नहीं हो सकता।

B शृंखलाओं की कमी या अनुपस्थिति के अन्य नकारात्मक प्रभाव भी होते हैं। जब शरीर सामान्य मात्रा में a शृंखलाओं का उत्पादन करता चला जाता है और उनके साथ जोड़े बनाने के लिए B शृंखलाएँ पर्याप्त नहीं होतीं तो अतिरिक्त a शृंखलाएँ संचित होने लगती हैं। ये अतिरिक्त B शृंखलाएँ शरीर द्वारा लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन में बाधा डालती हैं जिसके कारण लाल रक्त कोशिकाओं का उत्पादन 95 प्रतिशत तक घट जाता है। रक्त में पूर्ण रूप से विकसित लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या बहुत कम होने से शरीर में तीव्र रक्ताल्पता हो जाती है।

इसके अतिरिक्त B शृंखलाएँ प्रणाली में संचरण कर रही लाल रक्त कोशिकाओं में जमा हो जाती हैं और उनकी झिल्ली को क्षति पहुँचाकर उन्हें नष्ट कर देती हैं जिसके कारण रक्ताल्पता की तीव्रता और भी बढ़ जाती है। जिस प्रक्रिया के द्वारा लाल रक्त कोशिकाएँ नष्ट होती हैं उसे रुधिरलयन या हीमोलिसिस कहते हैं (ग्रीक भाषा में हीम का अर्थ रुधिर और लाइसिस का अर्थ नष्ट होना होता है) रुधिरलयन के कारण बिलिरुबिन का स्तर सामान्य से अधिक हो जाता है, बिलिरुबिन पीले रंग का एक रासायनिक पदार्थ है जो हीमोग्लोबिन के उपापचय में उत्पन्न होता है तथा रुधिरलयन की प्रक्रिया में नष्ट हुई लाल रक्त कोशिकाओं से निकलता है।

बिलिरुबिन अधिक मात्रा में निकलने से थैलासीमिया मेजर के रोगियों की आँखों तथा त्वचा का रंग पीला-पीला सा दिखाई देता है (कभी-कभी इसे पीलिया भी कह दिया जाता है)।

थैलासीमिया मेजर के कारण उत्पन्न तीव्र रक्ताल्पता के परिणामस्वरूप रोगी पीला, थका-थका सा लगता है और टैकीकार्डिया से पीड़ित होता है अर्थात् दिल की धड़कन असामान्य रूप से बढ़ी हुई होती है क्योंकि हृदय रक्त की ऑक्सीजन वहन करने की कमी को धड़कन की गति बढ़ा कर पूरा करने का प्रयास करता है। इससे हृदय का आकार भी बढ़ा हो जाता है। रोगियों के शारीरिक विकास की गति भी मंद पड़ जाती है और उनको सामान्य शारीरिक क्रिया-कलापों में भी कठिनाई आने लगती है। वे बार-बार रक्ताल्पता से ग्रस्त हो जाते हैं जिसमें उपचार से भी कोई लाभ नहीं होता। बच्चे कमजोर, सुस्त और चिड़चिड़े हो जाते हैं और कुछ अधिक ही रोने लगते हैं।

तीव्र रक्ताल्पता शरीर में कई अन्य प्ररिक्सा-प्रणालियों को भी सक्रिय कर देती है जिनमें सबसे प्रमुख है अस्थि मज्जा का प्रसार (या अतिसक्रियता)। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, लाल रक्त कोशिकाओं का उत्पादन अस्थि-मज्जा में होता है।

संचरण प्रणाली में लाल रक्त कोशिकाओं के स्तर में कमी को पूरा करने के प्रयास में अस्थि-मज्जा अधिक कोशिकाएँ उत्पन्न करने के लिए अपने सामान्य आकार से लगभग 30 गुनी बढ़ जाती है। फिर अस्थि-मज्जा का यह प्रसार हड्डियों को बढ़ने के लिए बाध्य कर देता है जिससे कपाल में विकृति उत्पन्न हो जाती है, ऊपर के दाँत बाहर की ओर निकल आते हैं तथा पसलियों और रीढ़ में विकृति आ जाती है। हड्डियाँ पतली और अधिक भुरभुरी हो जाती हैं जिसके कारण ये प्रायः टूट जाती हैं।

लाल रक्त कोशिकाएँ प्लीहा (स्प्लीन) में फिल्टर की जाती है। यह अंग सामान्यतः लाल रक्त कोशिकाओं का जीवन-चक्र पूरा

हो जाने पर उन्हें नष्ट करने का कार्य करता है। तथापि थैलासीमिया के रोगियों में प्लीहा को अति सक्रिय अस्थि-मज्जा द्वारा उत्पन्न लाल रक्त कोशिकाओं की एक विशाल संख्या का सामना करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप अतिरिक्त लाल रक्त कोशिकाओं को नष्ट करने के प्रयास में प्लीहा स्वयं अति सक्रिय हो जाती है और इसके आकार में वृद्धि होने लगती है। इस दशा को हाइपरस्पलीनिज्म कहते हैं। पुरानी लाल रक्त कोशिकाओं को नष्ट करने के साथ-साथ अति सक्रिय प्लीहा कुछ श्वेत रक्त कोशिकाओं, प्लेटलेट्स और नई लाल रक्त कोशिकाओं को भी नष्ट कर देती है जिसके कारण रक्ताल्पता की स्थिति और भी बदतर हो जाती है।

थैलासीमिया के रोगियों को परिसंचरण प्रणाली में परिसंचरित लाल रक्त कोशिकाओं का हीमोग्लोबिन सामान्य न होने के कारण उनके आकार में विकृति आ जाती है और वे प्रायः प्लीहा में फँस जाती है जिससे प्लीहा का आकार बढ़ता जाता है। अंततः प्लीहा स्वयं लाल रक्त कोशिकाओं का उत्पादन (मज्जाबाह्य रक्तोत्पादन) करके शरीर की रक्ताल्पता को अप्रभावी करने का प्रयास कर सकती है जिसके कारण इसके आकार में और भी वृद्धि हो सकती है।

अतः aश्रृंखलाओं की अधिकता और a की तुलना में Bश्रृंखलाओं की संख्या में असंतुलन थैलासीमिया मेजर की रोगात्मक शरीर क्रिया रोग के साथ जुड़े क्रियागत परिवर्तनों का मुख्य कारण है।

शरीर आँतों (गेस्ट्रोइन्टेस्टिनल ट्रैक्ट) से गुजरने वाले भोजन में से लौह का अधिक अवशोषण करके रक्त की कमी को पूरा करने का प्रयास करता है। हालाँकि इससे स्थिति और भी बदतर हो जाती है क्योंकि थैलासीमिया के रोगियों में रक्ताल्पता का कारण उनके शरीर का लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन में अक्षम होना है न कि लौह की कमी। लौह के अधिक अवशोषण से शरीर के समक्ष एक नया खतरा-लौह की अधिकता का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

थैलासीमिया का निदान

थैलासीमिया के साथ जन्मे बालक में इस रोग के प्रत्यक्ष लक्षण दिखाई नहीं देते। प्रयोगशाला परीक्षणों के द्वारा भी इसका निदान नहीं हो पाता यदि माता-पिता के परीक्षण न किए गए हों, जन्म-पूर्व परीक्षण न हुए हों और परिवार में कोई अन्य बच्चा इस रोग से प्रभावित न हो। इतनी प्रारंभिक अवस्था में थैलासीमिया का निदान इसलिए कठिन है क्योंकि पर्याप्त मात्रा में फीटल हीमोग्लोबिन (HbF) की उपस्थिति HbF बनाने वाली a और r ग्लोबिन श्रृंखलाओं की संख्या में संतुलन सुनिश्चित कर देती है। इस प्रकार पहले बताई जा चुकी लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन की अप्रभावी प्रक्रिया से इस छोटे बच्चे को सुरक्षा मिल जाती है।

मॉलीक्यूलर तकनीक से इस प्रारंभिक अवस्था में भी थैलासीमिया का निदान संभव है। इस तकनीक में माता और पिता प्रत्येक से बच्चे द्वारा वंशागति में प्राप्त उत्परिवर्तनों की पहचान की जाती है तथापि यह परीक्षण उसी स्थिति में किए जाने उपयुक्त होते हैं जब संदेह का विशेष कारण मौजूद हो जैसे कि जब बच्चे के जन्म के बाद माता-पिता को यह पता चले कि वे थैलासीमिया के वाहक हैं। दुर्भाग्यवश वहाँ भी जहाँ नवजात बच्चों के निरीक्षण कार्यक्रम भली भाँति चल रहे हैं। थैलासीमिया मेजर की घटनाओं के लिए नैदानिक परीक्षण इतनी प्रारंभिक अवस्था में अनिर्णायक ही रहते हैं। तथापि स्क्रीनिंग का उपयोग HbE या HbS जैसे रूप-भेदों की उपस्थिति का निदान करने के लिए किया जा सकता है।

अधिकतर केसों में थैलासीमिया मेजर का निदान 2 वर्ष की आयु से पूर्व किया जा सकता है। हालाँकि थैलासीमिया इन्टरमीडिया का निदान कुछ अधिक समय तक न हो सके यह संभव है। नीचे दी गई तालिका इस विषय में कुछ अन्वेषकों द्वारा किए गए कार्य के परिणामों के दर्शाती है।

थैलासीमिया मेजर (TM) या थैलासीमिया इन्टरमीडिया (TI) से प्रभावित शिशुओं की प्रस्तुतीकरण के समय आयु :

आयु (वर्षों में)	TM	TI
>1	75-62%	4-11%
1-2	35-29%	11-30%
>2	11-9%	22-59%

थैलासीमिया मेजर का निदान करने के लिए सामान्यतः प्रयुक्त रुधिर विज्ञान संबंधी विधियाँ

(1) **रुधिर-सूचकांक** - इन रुधिर प्राचलों को जिस इलेक्ट्रॉनिक उपकरण द्वारा नापा जाता है वह लाल रक्त कोशिका काउंटर है। लाल रक्त कोशिकाओं का आकार और आयतन तथा उनके अन्दर हीमोग्लोबिन की मात्रा को नापने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। जब लाल रक्त कोशिकाओं का आकार और आयतन तथा उनके अन्दर हीमोग्लोबिन की मात्रा काफी कम हो जाती है-हीमोग्लोबिन का स्तर 2-6 ग्रा./डेसी ली. हो जाता है तो थैलासीमिया का निदान हो जाता है।

थैलासीमिया के रोगियों में सर्वाधिक सामान्य रूप से मिलने वाले कुछ रुधिर-सूचकांक नीचे दिए गए हैं।

औसत (माध्य)	रेंज (सीमा)	
HbgèkdL	6.8	3.9-9.3
MCH pg	20.9	15-26
MCV FL	65.8	57-75
MCHC gèkdL	30.9	26-34

अपूर्ण विकसित (केन्द्रिकित) लाल रक्त कोशिकाओं की एक बड़ी संख्या में उपस्थिति के कारण, जिन्हें सेल काउंटर भूल से श्वेत रक्त कोशिका पहचान लेता है, श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या बढ़ी हुई प्रतीत हो सकती है। हालाँकि गणना की इस अशुद्धि का निराकरण अन्य प्रयोगशाला परीक्षणों के द्वारा सरलता से किया जा सकता है।

(2) ब्लड-फिल्म और लाल रक्त कोशिका की आकृति - एक माइक्रोस्कोप के द्वारा देखे जाने पर लाल रक्त कोशिकाएँ हल्क रंग की (विवर्ण) (देखें 2k) और सामान्य से छोटे आकार की (सूक्ष्माणु) दिखाई देती हैं और उनमें से अधिकतर की आकृतियाँ असामान्य होती हैं। असमकोशिकता और विकृताणुता वे असामान्यताएँ हैं जो लाल रक्त कोशिकाओं में पाई जाती हैं।

(3) हीमोग्लोबिन इलेक्ट्रोफोरेसिस (वैद्युत कण-संचलन) - इस प्रक्रिया द्वारा हीमोग्लोबिन के अणु को बनाने वाली विभिन्न प्रोटीनों जैसे कि HbA, HbA₂ और HbF को अलग-अलग किया जाता है। जब फीटल हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य से अधिक हो और यह 20-90 प्रतिशत के बीच मिले तो थैलासीमिया का निदान किया जा सकता है। HbA₂ जो सामान्यतः एक सामान्य वयस्क के हीमोग्लोबिन की 3 प्रतिशत होती है—यह बिल्कुल अनुपस्थित, कम, सामान्य मात्रा में या थोड़ी सी अधिक हो सकती है।

(4) आणविक विधियाँ (मॉलीक्यूलर विधि) - ये किसी निदान की पुष्टि करने या उसके विषय में अधिक सुस्पष्ट जानकारी प्राप्त करने की विशेष विधियाँ हैं। इनमें, उदाहरण के लिए किसी रोग दशा को उत्पन्न करने वाले उत्परिवर्तनों की पुष्टि, निदान की पुष्टि के अतिरिक्त रोग की तीव्रता का संकेत देने वाली सूचनाओं के लिए DNA परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। रुधिर प्राचलों के साथ-साथ a, B और r जीन के उत्परिवर्तनों का परीक्षण थैलासीमिया के निदान की पुष्टि करने और उपचार निर्धारित करने की दिशा में एक अनिवार्य कदम है। यद्यपि B थैलासीमिया मेजर का निदान सामान्यतः काफी सीधा सा कार्य है परन्तु विशेषतः विकासशील देशों में, जहाँ मलेरिया जैसे रोगों की व्यापकता निदान को जटिल बना देती है, कुछ कठिनाई आ सकती है। उदाहरण के लिए मलेरिया के कारण रक्ताल्पता और प्लीहा के आकार में वृद्धि हो सकती है और हालाँकि रक्त संबंधी प्रयोगशाला परिणाम बिल्कुल भिन्न हों तब भी रोगी की दशा और निदान का पुनर्मूल्यांकन करने से पहले रोगी का एंटीमलेरिया औषधियों से उपचार करना आवश्यक हो सकता है।

अन्य रोगों के कारण भी रक्ताल्पता और प्लीहा के आकार में वृद्धि हो सकती है और HbF का स्तर भी बढ़ा हुआ हो सकता है तथा विभेदक निदान (डिफरेंशियल डॉयामनोसिस) की आवश्यकता पड़ती है जिसके लिए कुछ अतिरिक्त नैदानिक और प्रयोगशाला परीक्षण किए जाते हैं।

थैलासीमिया की चिकित्सा आरंभ करने से पहले निदान की ठीक-ठीक पुष्टि कर लेना अत्यन्त आवश्यक होता है।

मुख्य हीमोग्लोबिन रोग

x ग्लोबिन श्रृंखला रोग

x थैलासीमिया

HbH रोग

x थैलासीमिया हाइड्रॉप्स फीटैलिस

(= Hb बार्ट्स हाइड्रॉप्स फीटैलिस)

HbSD रोग

अन्य दुर्लभ सिकलिंग रोग

B-थैलासीमिया

B-थैलासीमिया मेजर

B-थैलासीमिया इन्टरमीडिया

HbE/B-थैलासीमिया

अन्य दुर्लभ थैलासीमिया

B ग्लोबिन श्रृंखला रोग

सिकल सेक रोग

सिकल सेल एनीमिया (HbSS)

HbS/B-थैलासीमिया

HbSC रोग

B-थैलासीमिया मेजर की चिकित्सा गत तीन दशकों में रोग-विषयक अध्ययनों और अनुसंधानों से यह सिद्ध हो गया है कि थैलासीमिया मेजर रोग की चिकित्सा की जा सकती है। अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि सुरक्षित और उचित रूप से संसाधित रक्त द्वारा नियमित रक्ताधान और इसके साथ नियमित और प्रभावी ऑयरन कीलेटन रोगी की उत्तरजीविता और जीवन की गुणवत्ता में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि कर देता है।

यहाँ सुझाई गई यह चिकित्सा योजना थैलासीमिया में होने वाली रक्ताल्पता और इसके सभी परिणामों पर तथा रक्ताल्पता के उपचार के लिए की जाने वाली रक्ताधान चिकित्सा के कारण और स्वयं इस रोग के कारण ऊतकों में निरंतर होने वाले लौह के संचयन की रोकथाम पर केन्द्रित है।

अध्याय 3

रक्ताधान चिकित्सा

थैलासीमिया के रोगियों के जीवन की गुणवत्ता और दीर्घता में नियमित रक्ताधानों का बहुत बड़ा योगदान है और 1960 के दशक से ये थैलासीमिया की चिकित्सा का मुख्य पहलू रहे हैं।

यदि थैलासीमिया मेजर के विशेष लक्षणों गंभीर रक्ताल्पता और अस्थि-मज्जा के अति-प्रसार का प्रभावी ढंग से नियंत्रण न किया जाए तो इससे निम्नलिखित स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

- * मंद विकास
- * चेहरे तथा अन्य हड्डियों की विकृति
- * भंगुर हड्डियाँ तथा फ्रेक्चर
- * यकृत और प्लीहा के आकार में वृद्धि (ऑरगोनोमेगाली)
- * सामान्य शारीरिक सक्रियता में कमी

जीवन भर के लिए रक्ताधान या कम से कम जब तक थैलासीमिया मेजर से मुक्ति का उपचार उपलब्ध न हो जाए, इन लक्षणों में कमी ला सकता है या इन्हें उत्पन्न होने से रोक भी सकता है। हालाँकि रक्ताधान चिकित्सा आरंभ करने से पहले कई बातों पर विचार करना आवश्यक है—वे हैं :

- (1) रक्ताधान चिकित्सा कब आरंभ की जाए
- (2) सुरक्षित रक्ताधान कैसे सुनिश्चित करें
- (3) रक्ताधान क्या दें
- (4) सर्वाधिक उपयुक्त रक्ताधान चिकित्सा योजना कैसे निश्चित करें।

रक्ताधान चिकित्सा कब आरंभ की जाए थैलासीमिया मेजर के निदान की पुष्टि हो जाने के बाद ही रक्ताधान चिकित्सा आरंभ की जानी चाहिए। जैसा कि पहले बताया जा चुका है थैलासीमिया मेजर के निदान की पुष्टि जिन परीक्षणों पर आधारित होती है वे हैं :

- (1) हीमेटोलॉजिकल, मॉलीक्यूलर या हीमोग्लोबिन इलेक्ट्रोफोरेसिस जैसे परीक्षण या अन्य प्रयोगशाला परीक्षण जैसे कि हाई प्रेशर लिक्विड क्रोमेटोग्राफी (HPLC)
- (2) B और 2 थैलासीमिया उत्परिवर्तनों के प्रकार की पहचान करने तथा xmn1 रेस्ट्रिक्शन एन्ज़ाइम के स्थान की उपस्थिति का पता लगाने के लिए आनुवंशिक विश्लेषण, xmn1 रेस्ट्रिक्शन एन्ज़ाइम एक सूचक है जो रोग की गंभीरता और प्रत्येक रोगी के लिए सर्वाधिक उपयुक्त चिकित्सा योजना का निर्धारण करने में सहायता करता है।

रक्ताल्पता की गंभीरता का निर्धारण रक्त में हीमोग्लोबिन (Hb) के स्तर के आधार पर किया जाता है। इसे ग्राम (g) प्रति डेसी लीटर (dL - 1/100 लीटर) रक्त की मात्रा में नापा जाता है। हीमोग्लोबिन को प्रायः सेलकाउंटर नामक मशीन की सहायता से प्रयोगशाला में बड़ी सरलता से नापा जाता है। हीमोग्लोबिन को पुरानी विधियों जैसे कि साहली तकनीक से भी पूरी विश्वसनीयता के साथ नापा जा सकता है। हीमोग्लोबिन (Hb) का स्तर पुरुषों में 13-16 ग्रा./डेसी लीटर तथा स्त्रियों और बच्चों में 11-14 ग्रा./डेसी लीटर हो इसे आमतौर पर सामान्य समझा जाता है। पुरुषों और स्त्रियों दोनों में ही हीमोग्लोबिन का स्तर 8-110 ग्रा./डेसी ली. हो तो यह साधारण रक्ताल्पता दर्शाता है, स्तर 8 ग्रा./डेसी ली. से कम हो तो यह गंभीर रक्ताल्पता का सूचक है।

रोगियों को रक्ताधान चिकित्सा तभी आरंभ करनी चाहिए जब प्रयोगशाला परीक्षणों और मॉलीक्यूलर अध्ययनों (ऊपर वर्णित) के द्वारा थैलासीमिया की पुष्टि हो जाए और जब :

- * दो सप्ताह से अधिक के अंतर पर लगातार दो बार हीमोग्लोबिन का स्तर 7 ग्रा./डेसी ली. से कम मिले।
 - कभी-कभी हीमोग्लोबिन का स्तर 6-7 ग्रा./डेसी ली. होने पर भी रोगी की वृद्धि और विकास सामान्य हो सकता है पर इन परिस्थितियों में रक्ताधान आरंभ करने का निर्णय लेने के लिए अत्यधिक रोग-विषयक अनुभव और ध्यानपूर्वक निरीक्षण की आवश्यकता होती है।
 - * हीमोग्लोबिन का स्तर > 7 ग्रा./डेसी ली. हो पर इसके साथ शारीरिक लक्षणों पर भी ध्यान दिया जाए जैसे कि :
 - चेहरे की आकृति में परिवर्तन
 - मंद विकास और सीमित भार-वृद्धि
 - अस्थि भंग (फ्रेक्चर)
 - मज्जा-बाह्य रक्तोत्पादन (एक्सट्रा मेड्युलरी हीमेटोपोएसिस) जिसके कारण ट्यूमर-पिंड बनते हैं।
- जहाँ ये लक्षण दृष्टिगोचर हों, रक्ताधान चिकित्सा आरंभ करने में विलंब नहीं करना चाहिए।

सुरक्षित रक्ताधान चिकित्सा सुनिश्चित करना पर्याप्तता या उपलब्धता क्योंकि रक्ताधान थैलासीमिया के लिए जीवन भर चलने वाली चिकित्सा है इसलिए स्वास्थ्य प्राधिकरणों को रक्तदान की नीतियों का प्रचार करना चाहिए ताकि रोगियों के लिए पर्याप्त मात्रा में निरंतर रक्त की आपूर्ति सुनिश्चित हो सके।

संक्रामक रोगों के प्रसार की रोकथाम करना रक्ताधान चिकित्सा की रोगी के लिए यथासंभव सुरक्षित बनाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि दाता के रक्त से संक्रमण-कारकों जैसे कि वायरस, बैक्टीरिया या पैरासाइट के रोगी में संचरण की संभावना को सर्वथा न्यूनतम रखा जाए। रक्तदान द्वारा संक्रमण-कारकों के प्रसार के खतरे को कम से कम करने के लिए स्वास्थ्य प्राधिकरणों को निम्नलिखित उपाय करने चाहिए :

- स्वस्थ दाता का चुनाव करने के लक्ष्य से बनाई गई नीतियों का प्रसार और नियमित स्वैच्छिक रक्तदान सुविधाओं को प्रोत्साहन। भुगतान द्वारा रक्तदान से बचना चाहिए तथा रोगी को प्राप्त रक्त यूनिटों के बराबर रक्त देने के लिए मित्रों और संबंधियों (रिप्लेसमेंट डोनर) को ढूँढ़ कर लाने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए।
- हीपेटाइटिस के वायरस (B और C), एचआईवी+2 (एड्स उत्पन्न करने वाला वायरस) और सिफलिस जैसे महत्वपूर्ण संक्रमण कारकों के लिए दाता के रक्त का परीक्षण किया जाना चाहिए। कुछ देशों में वहाँ पाए जाने वाले अन्य संक्रमण कारकों जैसे कि मलेरिया आदि के परीक्षण भी आवश्यक हो सकते हैं।
- यह सुनिश्चित करना चाहिए कि राष्ट्रीय रक्ताधान सुविधाएँ जिनमें प्रयोगशालाएँ और ब्लड-बैंकों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली अन्य सुविधाएँ जैसे कि रक्त उत्पादों का भंडारण और परिवहन अंतर्राष्ट्रीय मानदण्डों के अनुरूप हों।

ब्लड-ग्रुप जीनोटाइस (जीन-प्ररूप) रक्त का सुरक्षित होना अन्य कारकों से भी जुड़ा होता है जैसे कि यह सुनिश्चित करना कि रक्त की महत्वपूर्ण ब्लड-ग्रुप प्रणालियों में से अधिक से अधिक के लिए रोगियों का परीक्षण (प्ररूप-निर्धारण) किया जाए। उदाहरण के लिए-रोगियों का परीक्षण उनका ब्लड-ग्रुप नियत करने के लिए और उनकी रीसस पॉजिटिव या निगेटिव स्थिति का पता लगाने के लिए तथा इसके साथ ही अन्य ब्लड-ग्रुप प्रणालियों जैसे कि केल (Kell), किड (Kidd) और डफ़ी (Duffy) द्वारा भी किया जाए।

एक बार रक्ताधान आरंभ हो जाने के बाद रक्त में विद्यमान सभी ब्लड-ग्रुपों का पता लगाना कठिन हो सकता है। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि रक्ताधान से पूर्व लाल कोशिकाओं के संपूर्ण जीन-प्ररूपों के लिए परीक्षण कर लिया जाए। आदर्श रूप में प्रत्येक रक्ताधान से पूर्व लाल कोशिकाओं के प्रति नई एंटीबॉडीज की उपस्थिति के लिए रोगियों का परीक्षण किया जाना चाहिए। रोगी और दाता का यथासंभव अधिक से अधिक ब्लड-ग्रुप प्रणालियों का मिलान करना ब्लड-ग्रुप के बेमेल या असंगत होने के कारण होने वाली प्रतिक्रियाओं को कम करने का एक महत्वपूर्ण उपाय है। लाल रक्त कोशिकाओं की 26 ब्लड-ग्रुप प्रणालियाँ होती हैं, जिनमें 600 विभिन्न एंटीजन होते हैं।

हालाँकि इन सबका मिलान करना संभव नहीं है फिर भी इनमें से सर्वाधिक सामान्य जैसे कि ABO, रीसस और केल (Kell) प्रणालियों का मिलान करने का यथासंभव प्रयास किया जाना चाहिए।

रक्ताधान में क्या

दाता से प्राप्त रक्त को संपूर्ण रक्त कहा जाता है जिसमें लाल रक्त कोशिकाओं के अतिरिक्त प्लैज़मा, श्वेत रक्त कोशिकाएँ और प्लेटलेट्स (रक्त विषय पर अध्याय का अवलोकन करें) भी होते हैं। संपूर्ण रक्त की लगभग 450 मि.ली. मात्रा-एक यूनिट-प्रत्येक दाता से प्राप्त की जाती है। प्लैज़मा, श्वेत रक्त कोशिकाएँ तथा अन्य कोशिकाएँ निकाल देने पर लगभग 250 मि.ली. लाल रक्त कोशिकाएँ-पैकड रेड सेल की एक यूनिट रक्ताधान के लिए प्राप्त होती है। इस पैक में अन्य तरल जैसे कि स्कंदन-रोधी (एंटीकोएगुलेंट्स) तथा पोषक तत्व भी मिलाए जाते हैं, मिलाए गए तरल की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि रक्त की यूनिट को किस प्रकार संसाधित किया गया है।

थैलासीमिया मेजर के रोगियों में लाल रक्त कोशिकाओं की कमी होती है। इसलिए रक्ताधान ले रहे रोगी को अदार्शतः केवल लाल रक्त कोशिकाएँ ही मिलनी चाहिए। उसमें संपूर्ण रक्त के अन्य अवयव जैसे कि प्लैज़मा, श्वेत रक्त कोशिकाएँ और प्लेटलेट्स नहीं होने चाहिए। यदि रोगी को संपूर्ण रक्त दिया जाता है तो शरीर की रक्त-संचरण प्रणाली पर दबाव पड़ेगा जिसके कारण हृदय की विफलता (हार्ट फल्योर) और छाती में द्रव एकत्र होने (पल्मोनरी एडिमा) जैसी जटिलताएँ उत्पन्न हो जाएँगी। संपूर्ण रक्त में से श्वेत रक्त कोशिकाएँ और प्लेटलेट्स निकाल देने से रक्ताधान के दौरान और बाद में ज्वर आने जैसे अवाञ्छित प्रभावों की संभावना में भी कमी आ जाती है। यद्यपि इन लक्षणों का उपचार किया जा सकता है, तथापि इन जटिलताओं से बचने के हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए और रोगी को रक्त का वही अवयव दिया जाना चाहिए जिसकी उसे आवश्यकता हो।

पैकड रेड सेल कैसे प्राप्त किए जाते हैं। लाल रक्त कोशिकाओं को संपूर्ण रक्त से प्रयोगशाला में चक्रण की प्रक्रिया द्वारा पृथक किया जाता है (सेन्ट्रिफ्यूगेशन) जिससे संपूर्ण रक्त में पाए जाने वाले प्लैज़मा और श्वेत रक्त कोशिकाओं का 70 प्रतिशत से अधिक अंश पृथक हो जाता है। सेन्ट्रिफ्यूगेशन के दौरान लाल रक्त कोशिकाएँ शेष अवयवों से पृथक होकर तल पर एकत्र हो जाती हैं जबकि प्लैज़मा, श्वेत रक्त कोशिकाएँ और थ्रोम्बोसाइट्स ऊपरी सतह पर आ जाते हैं जिससे उन्हें पृथक करना सरल हो जाता है। लाल रक्त कोशिकाओं में कई पदार्थों के घोल मिलाए जा सकते हैं जैसे कि स्कंदन-रोधी (एंटीकोएगुलेंट्स) जो कोशिकाओं को परस्पर चिपकने से रोकते हैं तथा पोषक अथवा संयोज्य पदार्थ जो लाल रक्त कोशिकाओं के जीवन काल को बढ़ा सकते हैं तथा उनकी गुणवत्ता को बनाए रखते हैं। SAGM (सेलाइन, एडिनिन, ग्लूकोज, मेनिटॉल), PAGGS-H (फॉस्फेट, एडिनिन, ग्लूकोज, गुआनोसाइन सेलाइन-मेनिटॉल), AS-3 (न्यूट्रिएल सिस्टम) और ADSL (एडिनिन, डेक्सट्रोस, सेलाइन-मेनिटॉल) प्रयोग किए जाने वाले कुछ संयोज्य घोल हैं। CPD (सिट्रेट,

फॉस्फेट, डेक्सट्रोज), CPDA-1 (सिट्रेट, फॉस्फेट, डेक्सट्रोज, एडिनिन) और CP2D (सिट्रेट, फॉस्फेट, डबल डेस्ट्रोज) स्कंदरोधी पदार्थ हैं

यूरोप में लाल रक्त कोशिकाओं की जीवन-क्षमता को बनाए रखने के लिए CPD \times SA6-M का संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है जिससे उन्हें 42-48 दिनों तक रखा जा सकता है जबकि अमरीका में CPDA-1 \times AS-3 या CP2D \times AS-3 का प्रयोग किया जाता है।

थैलासीमिया के रोगियों को जो पैक्ड रेड सेल दिए जाएँ वे 7 दिन में अधिक पुराने न हों तो बेहतर है। और जहाँ वे पोषक पदार्थ भी जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है मिला दिए गए हों वहाँ भी रोगियों को 2 सप्ताह से अधिक पुराने पैक्ड रेड सेल नहीं देने चाहिए क्योंकि अभी तक ऐसे विश्वस्त अध्ययन उपलब्ध नहीं हैं जिनसे यह पुष्टि हो सके कि थैलासीमिया की चिकित्सा में अधिक समय तक रखी गई लाल रक्त कोशिकाएँ उतनी ही लाभकारी हैं जितनी कि कम समय रखी गई लाल रक्त कोशिकाएँ होती हैं।

रक्त की गुणवत्ता और निरापदता में सुधार लाने के लिए अन्य प्रक्रियाएँ

1. प्रक्षालित पैक्ड लाल रक्त कोशिकाएँ

रक्ताधान द्वारा दिए गए रक्त में प्रोटीन की उपस्थिति रोगियों में साधारण से तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकती है। यद्यपि ऊपर वर्णित अपकेन्द्रीकरण (सेन्ट्रिफ्यूगेशन) की प्रक्रिया के द्वारा संपूर्ण रक्त में से 70 प्रतिशत प्लैज़मा और प्रोटीन निकाल दी जाती है। पैक्ड लाल रक्त कोशिकाओं की गुणवत्ता को और अधिक बढ़ाया जा सकता है जिसके लिए इन्हें सेलाइन के घोल में प्रक्षालित (वाश) किया जाता है जिससे प्लैज़मा और प्रोटीन की यथासंभव अधिकतम मात्रा बाहर निकल जाती है। अधिकतर रोगियों के लिए प्रायः इस प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक बार प्रक्षालित कर लिए जाने के बाद लाल रक्त कोशिकाओं को सामान्यतः 24 घंटे के अन्दर प्रयोग कर लेना होता है।

2. श्वेत कोशिका न्यूनीकृत पैक्ड लाल रक्त कोशिकाएँ—श्वेत रक्त कोशिकाओं के कारण होने वाली अवांछित प्रतिक्रियाओं को कम से कम रखने के लिए अंतर्राष्ट्रीय निर्देशों के अनुसार लाल रक्त कोशिकाओं की एक यूनिट में श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या 1×10^6 कोशिकाओं से कम रखी जानी चाहिए। यह माना जाता है कि ये प्रतिक्रियाएँ जिनमें प्रायः ज्वर हो जाता है। श्वेत रक्त कोशिकाओं से निकलने वाले रसायनों कीमोकाइनुस का परिणाम होती है। इसके अतिरिक्त श्वेत रक्त कोशिकाओं को निकालने से इनके द्वारा वहन किए जा रहे संक्रमण कारक जैसे कि यरसीनिया-एन्टेरोकोलिटिका, CMV, EBV, B₁₉ और HAV (संक्षिप्त रूप देखें) भी निकल जाते हैं। इन रोगाणुओं की ब्लड-बैंकों में जाँच नहीं की जाती है किन्तु ये रोगाणु कुछ परिस्थितियों में तीव्र संक्रमण उत्पन्न कर सकते हैं।

श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या कम करने (श्वेत कोशिका न्यूनीकरण अथवा श्वेत कोशिका निःशेषण) की विधियाँ—

(a) **फिल्ट्रेशन**—श्वेत रक्त कोशिकाओं और उनसे संबद्ध संक्रमण कारकों को ब्लड बैगों में लगे विशेष फिल्टरों के प्रयोग से सबसे अच्छी तरह निकाला जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय निर्देशों के अनुसार फिल्ट्रेशन रक्त लेने के बाद 4-8 घंटे के विलंब से करना चाहिए, इस अवधि में इसे फ्रिज में रखना चाहिए। फिल्ट्रेशन में विलंब से श्वेत रक्त कोशिकाओं में पाए जाने वाले एंजाइमों (फेगोसाइट्स) को थरसीनिया एन्टेरोकोलिटिका जैसे बैक्टीरिया को नष्ट करने का समय मिल जाता है, अन्यथा ये बैक्टीरिया श्वेत रक्त कोशिका में प्रवेश करके उनके अन्दर संवर्धित हो सकते हैं (सामने देखें)। फिल्ट्रेशन ब्लड बैंक में या रक्ताधान के समय रोगी के बिस्तर के पास भी किया जा सकता है। यद्यपि रोगी के बिस्तर के पास किए गए फिल्ट्रेशन से श्वेत रक्त कोशिकाओं को तो प्रभावी ढंग से निकाला जा सकता है पर गुणता-नियंत्रण में अधिक कठिनाई आ सकती है। हाल के वर्षों में श्वेत कोशिकाओं के फिल्ट्रेशन को और भी अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। विशेष रूप से B-थैलासीमिया के उन छोटी आयु के रोगियों के लिए जिनका अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण (BHT) होना है या हो चुका है। ऐसा इसलिए है क्योंकि श्वेत रक्त कोशिकाओं का संबंध साइटोमेगालोवायरस नामक विषाणु (CMV) से होता है जो क्षीण प्रतिरक्षा-तंत्र (इम्यूनो सप्रेस्ड) वाले रोगियों में गम्भीर और घातक संक्रमण भी उत्पन्न कर सकते हैं, जैसा कि प्रत्यारोपित रोगियों में देखा गया है।

जहाँ ब्लड बैंक प्लैज़मा पृथक करने या रक्त को ऊपर बताई गई विधि से प्रक्षालित अथवा फिल्टर करने में असमर्थ हों वहाँ दाता से प्राप्त रक्त को 4°C पर 24-48 घंटों के लिए फ्रिज में रख देना चाहिए जिससे लाल रक्त कोशिकाएँ ब्लड-बैग के तल पर एकत्र हो जाती है जबकि प्लैज़मा, श्वेत रक्त कोशिकाएँ, प्लेटलेट्स और मलबा, जिसे बफ़ीकोट (Buffy Coat) कहते हैं ऊपर सतह पर आ जाते हैं जहाँ से इन्हें साधारण प्रयोगशाला उपकरण की सहायता से यथासंभव निकाल लिया जाता है। तथापि यह प्रक्रिया फिल्ट्रेशन की तुलना में 1000 गुणा कम प्रभावी है।

श्वेत रक्त कोशिकाओं की पृथक करने की विभिन्न विधियों की प्रभावकारिता

* स्वाभाविक रूपसे पृथक करने के लिए फ्रिज में रखकर छोड़े गए रक्त से बफ़ी कोट (Buffy Coat) अलग करना इसमें $<1.2 \times 10^9$ श्वेत रक्त कोशिकाएँ प्रति ब्लड यूनिट रह जाती हैं।

- * लाल रक्त कोशिकाओं को अपकेन्दीकरण (सेन्ट्रिफ्यूगेशन) द्वारा पृथक करना और सेलाइन के घोल से प्रक्षालित करना। इसमें $<1 \times 10^7$ श्वेत रक्त कोशिकाएँ प्रति ब्लड यूनिट रह जाती हैं।
- * रोगी के बिस्तर के पास पैकड लाल रक्त कोशिकाओं को फिल्टर करना। इसमें $< 5 \times 10^6$ श्वेत रक्त कोशिकाएँ प्रति ब्लड यूनिट रह जाती हैं।
- * पैकड लाल रक्त कोशिकाओं को ब्लड बैंक की प्रयोगशाला में फिल्टर करना इसमें $<5 \times 10^6$ श्वेत रक्त कोशिकाएँ प्रति ब्लड यूनिट रह जाती हैं।
- * भंडारण-पूर्व फिल्टर की गई लाल रक्त कोशिकाएँ : इसमें $<1 \times 10^6$ श्वेत रक्त कोशिकाएँ प्रति ब्लड यूनिट रह जाती हैं आर्दशतः थैलासीमिया मेजर के सभी रोगियों को भंडारण-पूर्व फिल्टर की गई प्रक्षालित पूरी तरह से मिलान की गई और स्कंदन-रोधी (एंटीकोएग्युलेन्ट)/पोषक तत्वों के घोल से युक्त लाल रक्त कोशिकाओं का रक्ताधान किया जाना चाहिए। हालाँकि जहाँ यह संभव न हो वहाँ विशिष्ट आवश्यकता वाले रोगियों के लिए विशेष रक्त-उत्पादों के प्रयोग के विषय में विचार करना चाहिए।

1. जिन रोगियों के रक्त में एक विशेष प्रोटीन 1gA का अभाव होता है तथा जिन रोगियों में रक्ताधान चिकित्सा के प्रति बार-बार तीव्र एलर्जिक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है। उनके लिए प्रक्षालित लाल रक्त कोशिकाएँ तैयार की जानी चाहिए। कुछ रोगी जिनमें 1gA का अभाव नहीं है फिर भी उन्हें फिल्टर किए हुए रक्त से बार-बार ज्वर हो जाता है। उनमें रक्ताधान करने से पूर्व लाल रक्त कोशिकाओं को प्रक्षालित करने की आवश्यकता होती है।

2. दुर्लभ RBC एंटीजन वाले रोगियों को जिनके लिए रक्तदाताओं का ठीक-ठीक मिलान करना कठिन होता है जमे हुए का निम्नताप-परिरक्षित RBC उपलब्ध कराने चाहिए। यूरोप और अमरीका में दुर्लभ रक्त-वर्ग के RBCs को जमी हुई अवस्था में विशेष प्रकार के चिकित्सा केन्द्रों में 60°C पर जमा कर ग्लिसरोल के 40 प्रतिशत घोल में रखा जाता है। इस स्थिति में इन्हें 10 वर्षों तक रखा जा सकता है।

3. जिन रोगियों का अस्मिन्ज्जा प्रत्यारोपण हो गया है या होना है उन्हें विकिरण-उपचारित RBC उपलब्ध कराने चाहिए ताकि रोपण बनाम रोपित (GUHD) नामक गंभीर रोग को होने से रोका जा सके (विवरण के लिए आगे देखें)

4. जिन रोगियों में रक्ताधान के पश्चात प्रायः श्वेत रक्त कोशिकाओं से संबंधित प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हो जाती हैं उन्हें श्वेत कोशिका-न्यूनीकृत RBCs उपलब्ध कराने चाहिए। जिन अल्प वयस्क रोगियों में अभी हाल में रोग-निदान हुआ है और जिनका अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण होता है, साइटोयेगालोवायरस संक्रमण (SMV) से बचाने के लिए उन्हें भी श्वेत कोशिका-न्यूनीकृत रक्त उपलब्ध कराना चाहिए तथा जिनका प्रत्यारोपण हो चुका है और जिन्हें रक्ताधान की आवश्यकता हो सकती है उनको भी CMV के पुनः संक्रमण से बचाने के लिए श्वेत कोशिका न्यूनीकृत रक्त उपलब्ध कराना चाहिए।

रक्ताधान योजना की रूपरेखा बनाना

आवश्यक रक्त की मात्रा का आकलन करना रोगी के लिए आवश्यक रक्त की मात्रा और रक्ताधान की गति रोगी की आयु और उसकी नैदानिक स्थिति पर निर्भर करती है, इसके साथ ही यह लाल रक्त कोशिकाओं के परिरक्षण के लिए मिलाए गए घोलों, रोगी की लाल रक्त कोशिकाओं के हीमेटोक्रिट (हीमोग्लोबिन के समान एक पैरामीटर) और हीमोग्लोबिन के लक्षित स्तर पर भी निर्भर करती है।

अतिरक्ताधान योजनाओं से बिल्कुल भिन्न साधारण रक्ताधान योजना (अधिकतर थैलासीमिया विशेषज्ञों द्वारा अनुशंसित) में रोगी को प्रति 2-5 सप्ताह में (अंतराल) सामान्यतः 10-15 मि.ली. सांद्रित लाल रक्त कोशिकाएँ (मात्रा) प्रति कि.ग्रा. शरीर के भार के अनुसार 3-4 घंटे की अवधि में (गति) (दाता के RBC के हीमेटोक्रिट के 75 प्रतिशत पर आधारित) रक्ताधान द्वारा दी जाती हैं। जिस रोगी का प्लीहाच्छेदन (स्प्लीनेक्टमी) नहीं हुआ है उसे प्रति कि.ग्रा. प्रतिवर्ष लगभग 180 मि.ली. शुद्ध लाल रक्त कोशिकाओं की आवश्यकता होती है जबकि प्लीहाच्छेदन वाले रोगी को लगभग 133 मि.ली./कि.ग्रा./वर्ष शुद्ध लाल रक्त कोशिकाओं की आवश्यकता होती है।

जहाँ रोगी को हृदय संबंधी समस्याएँ हो जाती हैं या जहाँ रक्ताधान हीमोग्लोबिन का स्तर 5 ग्रा./डेसी ली. से कम हो जाने के बाद आरंभ होता है, रक्त की कम मात्रा धीमी गति से दी जाती है (उदाहरण के लिए 2-5 मि.ली. RBC/कि.ग्रा./घंटे की दर से)।

किसी रोगी के लिए आवश्यक रक्त की ठीक-ठीक मात्रा का आकलन करने में स्वास्थ्य कर्मियों की सहायता के लिए विविध तालिकाएँ और ग्राफ (3a, 3b) उपलब्ध हैं।

रक्ताधान योजना का यह लक्ष्य होना चाहिए कि रक्ताधान से पूर्व रोगी के हीमोग्लोबिन का स्तर 9-10.5 ग्रा./डेसी लि. रहे और रक्ताधान के पश्चात 15 ग्रा./डेसी ली. से अधिक न हो। इस रक्ताधान योजना में रोगियों को निम्नलिखित अनुभव होते हैं :

- * अस्थि मज्जा का
- * सामान्य विकास और शारीरिक ऊर्जा में वृद्धि
- * प्लीहा (स्प्लीन) के आकार में वृद्धि नहीं या विलंबित
- * रक्त के गाढ़पन में कमी, जिसके कारण रक्त के थक्के जमने और रक्त की नलियों में रुकावट होने, सिरदर्द और नाक से रक्त बहने का खतरा रहता है तथा
- * शरीर के अंगों में अतिरिक्त लौह का जमाव कम होता है।

दो रक्ताधानों के बीच के अन्तराल के लिए अन्य कारकों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए जिनमें रोगी के कार्य या स्कूल की समय-सारिणी और रक्ताधान केन्द्र तक जाने के लिए तय की जाने वाली दूरी सम्मिलित है। जहाँ तक संभव हो रक्ताधान का समय-निर्धारण रोगी की जीवन शैली और चिकित्सा आवश्यकताओं के अनुरूप करना चाहिए।

रक्ताधान योजना की प्रभावकारिता का मूल्यांकन करना

किसी भी रक्ताधान योजना की प्रभावकारिता प्रायः हीमोग्लोबिन का स्तर गिरने की दर से नापी जाती है जोकि प्लीहाच्छेदन (स्प्लीनेक्टमी) वाले रोगियों में 1 ग्रा./डेसी ली./सप्ताह से अधिक नहीं होनी चाहिए और जिनका प्लीहाच्छेदन नहीं हुआ है उनमें 1.5 ग्रा./डेसी ली./सप्ताह से अधिक नहीं होनी चाहिए।

यदि हीमोग्लोबिन का स्तर अधिक तेजी गिरता हुआ पाया जाए तो निम्नलिखित कारकों की जाँच करनी चाहिए :

- * लाल रक्त कोशिकाओं के प्रति एंटीबॉडीज (एलोइम्यूनाइजेशन, इसके लिए रक्ताधान से संबंधित प्रतिक्रियाएँ देखें)
- * परिवर्धित प्लीहा (हाइपर स्प्लीनिज्म) और अथवा यकृत (हीपेटोमेगाली) जिसमें रोगी को 200 मि.ली./कि.ग्रा./ वर्ष से अधिक लाल रक्त कोशिकाओं की आवश्यकता होती है; उदाहरण के लिए परिवर्धित प्लीहा की संभावना के लिए जाँच की जानी चाहिए।
- * निम्न स्तर का रक्त अर्थात् लाल रक्त कोशिकाएँ कम जीवन अवधि वाली और कार्य में कम प्रभावकारी होना।
- * रक्तस्राव (जैसे कि आँतों से)
- * औषधियों (जैसे कि रिबाविरिन) के प्रयोग से लाल रक्त कोशिकाओं का अधिक नष्ट होना संक्रमण से (जैसे मलेरिया) लाल रक्त कोशिकाओं का अधिक नष्ट होना आर्दशतः रक्ताधान योजना की प्रभावकारिता को जाँचने के लिए प्रत्येक रक्ताधान से पहले और बाद में हीमोग्लोबिन के स्तर को नापा जाना चाहिए। यदि यह संभव न हो तो हीमोग्लोबिन का स्तर जितनी बार संभव हो सके नापना चाहिए—सप्ताह में एक बार, 15 दिनों में एक बार, या जब भी रोगी को रक्ताधान दिया जाए।

रक्ताधान से सम्बद्ध प्रतिक्रियाएँ

रक्ताधान के कारण किसी रोगी में अवांछित प्रतिक्रिया या जटिलता उत्पन्न हो सकती है। इसे रक्ताधान-प्रतिक्रिया कहा जाता है। रक्ताधान प्रतिक्रिया (TR) एक प्रतिकूल घटना है जो किसी रोगी में रक्ताधान के दौरान या बाद में घटित हो सकती है। लगभग 4 प्रतिशत रक्ताधान (निम्न स्तर के रक्त के साथ यह काफी अधिक हो सकता है) किसी न किसी प्रकार की अवांछित या प्रतिकूल प्रतिक्रिया से संबद्ध होते हैं। रक्ताधान का अर्थ है एक विजातीय पदार्थदाता के रक्त को रोगी के शरीर में प्रवेश कराना। अतः रोगी की प्रतिरक्षा-प्रणाली से प्रतिक्रियाकी अपेक्षा करना तर्कसंगत ही है जैसे कि अस्थि-मज्जा या अंग प्रत्यारोपण में प्रतिक्रिया होना अपेक्षित होता है। वस्तुतः प्रत्येक चिकित्सा प्रक्रिया के लाभ भी होते हैं और रोगी के खतरे की संभावना भी होती है। स्वास्थ्य-कर्मियों द्वारा इनका सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

रक्ताधान ले रहे रोगियों को प्रभावित करने वाली प्रतिक्रियाओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

- A. प्रतिरक्षा प्रणाली के माध्यम से रक्ताधान प्रतिक्रियाएँ—इनमें रोगी की प्रतिरक्षा-प्रणाली दिए गए रक्त के लिए प्रतिक्रिया दिखाती है।
- B. प्रतिरक्षा प्रणाली से असम्बद्ध रक्ताधान प्रतिक्रियाएँ—ये प्रतिक्रियाएँ रोगी की प्रतिरक्षा प्रणाली का परिणाम नहीं होतीं।

इन दोनों ही श्रेणियों की प्रतिक्रियाएँ रक्ताधान के दौरान या रक्ताधान के नजदीक (तीव्र प्रतिक्रियाएँ) हो सकती हैं—मात्र कुछ मिलिलीटर रक्त के प्रवेश के बाद, रक्ताधान के दौरान या रक्ताधान समाप्त हो जाने के बाद या प्रतिक्रिया विलम्ब से भी हो सकती है। यह रक्ताधान के कई दिन या कई सप्ताह बाद या और भी लम्बी अवधि के बाद हो सकती हैं।

नीचे दी गई तालिकाएँ (543) श्रेणी A और B की होने वाली प्रतिक्रियाओं और उनकी आवृत्ति को दर्शाती हैं (देखें 3c, 3d, 3e)

तालिका-1 (3c)
प्रतिरक्षा प्रणाली के माध्यम से होने वाली प्रतिक्रियाएँ

तीव्र	आवृति	विलंबित	आवृति
हीमोलिटिक (इन्ट्रावेस्कुलर)	1/25,000	एलोइम्यून	1/1000
एनाफिलेक्टिक	1/50,000	हीमोलिटिक (एक्सट्रा वेस्कुलर)	1/2,500
फेब्राइल नॉन-हीमोलिटिक	1/100	प्लेटलेट रिफ्रेक्टोनेस	1/10
एलर्जिक (अर्टिकारियल)	1/100	GUHD	विरल
रक्ताधान-संबंधित तीव्र फुफ्फुस क्षति (TRALI)	1/10,000		

तालिका-2 (3d)
प्रतिरक्षा प्रणाली से असंबद्ध रक्ताधान प्रतिक्रियाएँ

तीव्र	आवृति	विलंबित	आवृति
हीमोलिटिक उपापचयी	उपापचयी लौह अतिभार	दीर्घकालिक संक्रामक	(प्रयोगशाला में)
स्कंदन रोग	विरल	1. बैक्टीरियल	
हाइपोथर्मिया	विरल	ग्राम-निगेटिव	1/15,000
सिट्रेट विषाक्तता	विरल	ग्राम-पॉजिटिव	1/2000
हाइपोकैल्सीमिया	विरल	Z. वायरल	
हाइपरकैल्सीमिया	विरल	HBV HCV HIV 18 x 2 HTLV 18 x 2 CMV E-B B-19	
एम्बोलिक	विरल	3. प्रिऑन्स : क्र्यूट्जफेल्ड जेकब 4. पैरासाइटिक : (मलेरिया)	
		परिसंचरण अतिभार	1/10,000

* वायरल-वायरल संपर्क विकारों की प्रायिकता में देशों में व्यापक भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता जन स्वास्थ्य और रक्ताधान सुविधाओं के स्तर तथा इन रोगणुओं की स्थानीय व्यापकता पर निर्भर करती है। इस तालिका में दर्शायी गई प्रायिकता हाल के वर्षों में यूरोप में सामान्यतः प्राप्त सूचनाओं पर आधारित है।

* पैरासाइटिक संचरण - पैरासाइटिक संचरण की प्रायिकता विकासशील देशों में अधिक सामान्य है।

तालिका-3 रक्ताधान से संबंधित कुछ प्रतिक्रियाओं के कारणों, वह अवस्था जिसमें इन प्रतिक्रियाओं के होने की प्रायिकता सबसे अधिक होती है और इनसे संबंधित लक्षणों के विषय में सूचना देती है।

रक्ताधान से संबंधित प्रतिक्रियाओं के कारण, उनके उत्पन्न होने का समय और उनके लक्षण

प्रतिक्रिया का प्रकार (1)	समय (2)	कारण (3)	लक्षण (4)
तीव्र हीमोलिटिक	कुछ मि.ली. रक्त दिए जाने के बाद	ABO असंगतता	सांस फूलना छाती जकड़ना, ज्वर, ठंड लगना, दर, रक्तचाप कम हो जाना, सदमा, गुर्दे फेल हो जाना
एनाफिलैक्टिक		1gA की जन्मजात कमी	त्वचा लाल हो जाना पित्ती, खुजली, सांस फूलना, अतिसार, छाती में दर्द, रक्तचाप बढ़ना, बेहोशी, सदमा

एअर बैक्टीरियल सम्पर्क-विकार सेप्सिस	रक्ताधान की अंतिम अवस्था में या समाप्त	रक्त संचरण प्रणाली में वायु का प्रवेश निषेचित रक्त के माध्यम से बैक्टीरिया का संचरण	खाँसी, सांस फूलना, छाती में दर्द, सदमा, ज्वर, ठंड लगना, उल्टी, दस्त, रक्तचाप में कमी, सदमा, गुर्दे फेल होना आदि
संचरण अतिभार		रक्ताधान की तेज गति	सांस फूलना, शरीर का नीलापन, सिस्टोलिक, रक्तचाप में वृद्धि
TRALI (रक्ताधान- संबंधित तीव्र फुफ्फुस क्षति)		निषेचित एंटी- ल्यूकोसाइट एंटीबाडी और रोगी के ग्रेन्युलोसाइट में प्रतिक्रिया	सांस फूलना, शरीर का नीला पड़ना खाँसी, रक्तचाप में कमी
FNHTR (फेब्राइल, नान- हीमोलिटिक ट्रांसफ्यूशन रिएक्शन)		निषेचित रक्त में मौजूद ल्यूकोसाइट एंजीजन और रोगी के रक्त की ल्यूकोसाइट एंटीबाडीज में प्रतिक्रिया, यह माना जाता है कि कुछ प्रतिक्रियाएँ साइटोकाइन नामक प्रोटीन के निषेचन से होती है। यह प्रोटीन रक्त के भंडारण के दौरान ल्यूकोसाइट्स द्वारा बनाई जाती है।	रोगी के तापमान में 10C या अधिक की वृद्धि, जिसका कोई अन्य चिकित्सीय व्याख्या न हो।
एलर्जी (अर्टिकारिआ)		दाता के रक्त में मौजूद विजातीय एलर्जन की रोगी की एंटीबाडीज से या रोगी के रक्त में मौजूद विजातीय एलर्जन की दाता की एंटीबाडीज से प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप	पिप्ती (अर्टिकारिआ) चकत्ते, सीमित सूजन
GVHD	3-30 दिन	रोगी के HLA एंटीजन दाता के T-लिम्फोसाइट्स को सक्रिय कर देते हैं विशेष रूप से (1) इम्यूनो सप्रेष्ट रोगियों में (2) गर्भाशय में रक्ताधान ले रहे भ्रूणों में (3) विनिमय रक्ताधान ले रहे नवजात शिशुओं में (4) संबंधी से रक्त ले रहे रोगियों में	ज्वर, पेट खराब होना, पतले दस्त, खुजली, त्वचा लाल होना और पैन्साइटोपीनिआ
ऐलोइम्यून प्रतिक्रियाएँ (देखें तालिका-4)	कुछ दिन या सप्ताह के बाद	रोगियों में कुछ RBC एंटीजनों के प्रति एंटीबाडीज बन जाती है जिससे निषेचित रक्त का हीमोलिसिस हो जाता है।	हल्का ज्वर, कंपकंपी, साधारण पीलिया, घटता हुआ हीमोग्लोबिन का स्तर (रक्ताधान चिकित्सा आरंभ के वर्षों, 3 वर्ष से पहले आरंभ करने से इन लक्षणों के उत्पन्न होने की संभावना को कम किया जा सकता है।
हीमोलिटिक विलंबित एनामनिस्टिक प्रतिक्रिया	3-7 दिन	उपर्युक्त पर रक्ताधान-पूर्व प्रयोगशाला परीक्षणों में एंटीबाडीजन की पहचान न हो सकना और रक्ताधान किए जाने पर प्रतिरक्षा प्रणाली द्वारा अत्यधिक एंटीबाडीज का उत्पादन करना	

रक्ताधान से होने वाली प्रतिक्रियाओं का उपचार रक्ताधान से संबंधित प्रतिक्रियाओं के परिणामों का पूर्वानुमान प्रतिक्रिया की तीव्रता पर निर्भर करता है। इन प्रतिक्रियाओं के उपचार की रूपरेखा नीचे दी जा रही है।

गंभीर जटिलताएँ :

* तीव्र रुधिरलयी रक्ताधान प्रतिक्रिया (AHTR), एनाफिलेक्टिक सेप्सिस (बैक्टेरियल सम्पर्क विकार) और एअर एम्बोलिज्म होने पर रक्ताधान रोक दिया जाता है। शिरा के माध्यम से तरल दिये जा सकते हैं और संबंधित जटिलताओं के उपचार या रोकथाम के लिए विभिन्न औषधियों का प्रयोग किया जा सकता है। ये जटिलताएँ प्रकीर्ण अंतरवाहिका स्कंदन (DIC), गुर्दे फेल होना और प्रघात (शॉक) हो सकती है।

- * संचरण प्रणाली के अतिभार का उपचार ऑक्सीजन या मूत्रवर्धक औषधियों द्वारा किया जा सकता है—इससे मूत्र अधिक मात्रा में आता है।
- * रक्ताधान संबंधित तीव्र फुफ्फुस क्षति (TRALI) का उपचार समुचित श्वसन सहायता से किया जा सकता है।
- * हीमोलिटिक एनामनिस्टिक विलंबित प्रतिक्रिया और ऐलोइम्यूनाइजेशन के प्रभावों को कॉर्टिकोस्टीरॉयड से कम किया जा सकता है।
- * ग्राफ्ट बनाम होस्ट रोग (GVHD) के लिए उपयुक्त सहयोगी उपचार की आवश्यकता होती है।
- * वायरल सम्पर्क विकारों का संबंधित वायरस के अनुसार उपचार करना चाहिए।
सुसाध्य जटिलताएँ
- * फेब्राइल नॉन हीमोलिटिक ट्रांसफ्यूशन रिएक्शन (FNHTR) का उपचार ज्वारनाशक दवाओं से किया जा सकता है।
- * एलर्जिक (अटिकारिआ): चकत्ते और खुजली को एंटीहिस्टामिनो द्वारा कम किया जा सकता है।

रक्ताधान प्रतिक्रियाओं की रोकथाम रक्ताधान सुविधाओं तथा अन्य संबंधित विभागों को इस प्रकार की नीतियों को सख्ती के साथ लागू करना चाहिए जिनसे यह सुनिश्चित हो सके कि सदैव रक्ताधान की सर्वश्रेष्ठ विधियों का पालन किया जा रहा है और रोगियों के स्वास्थ्य और उनकी सुरक्षा के लिए कोई खतरा नहीं है। स्वास्थ्य कर्मियों को रक्ताधान संबंधी प्रचलित मानदण्डों और कार्य-विधियों का कड़ाई से पालन करना चाहिए। रोगी की गलत पहचान (और इसी प्रकार ब्लड-ग्रुप की हालत पहचान) रक्ताधान के कारण होने वाली मृत्यु के मामलों में प्राप्त विवरणों के अनुसार सर्वाधिक सामान्य त्रुटि पाई गई है।

1. ब्लड-ग्रुप और मिलान के लिए प्राप्त नमूने स्पष्ट रूप से पहचान युक्त होने चाहिए। नमूना लेने से पहले टेस्ट ट्यूब के लेबल पर रोगी का पूरा नाम और जन्म तिथि लिख देनी चाहिए और रक्ताधान आवेदन-पत्र पर दिए गए विवरण को चेक कर लेना चाहिए।
2. चिकित्सा अधिकारी को यह जाँच लेना चाहिए कि निषेचन के उपकरणों को निर्माता की सिफारिशों के अनुसार प्रयोग किया जा रहा है।
3. ब्लड यूनिट को उपकरण में लगाने से पहले चिकित्सा अधिकारी ब्लड यूनिट को देखकर यह जाँच कर ले कि कहीं यह संदूषित तो नहीं है अर्थात् इसका रंग बदलकर गहरा बैंगनी तो नहीं हो गया है, इसमें स्कंदन (धक्के बनना) या रुधिरलयन (हीमोलिसिस) के लक्षण तो नहीं हैं और उसकी प्रयोग-अवधि समाप्त तो नहीं हो गई है।
4. रोगी के ब्लड-ग्रुप के प्रमाण पत्र को ब्लड-यूनिट के लेबल पर अंकित ब्लड-ग्रुप से मिलाकर रोगी और ब्लड यूनिट के मेल की जाँच करनी चाहिए।
5. रोगी को दी गई ब्लड-यूनिटों के पहचान संबंधी विवरणों को रोगी के रिकॉर्ड में दर्ज कर देना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर दाताओं का पता लगाया जा सके।
6. रक्ताधान के दौरान विशेष रूप से प्रारंभिक अवस्था में रोगी को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए क्योंकि रक्ताधान प्रतिक्रिया (TR) होने की संभावना इसी समय सबसे अधिक होती है।
7. रक्त अवयवों को निर्धारित समयावधि के अन्दर दे देना चाहिए ताकि चिकित्सा-प्रभाव, सुरक्षा और सुविधा में कमी की संभावना से बचा जा सके।
8. ठंडे रक्त को तेज गति से देना खतरनाक हो सकता है। जमाएँ गई यूनिटों को अत्यन्त सावधानीपूर्वक संभालना चाहिए क्योंकि कम तापमान पर इनके बैग भुरभुरे हो सकते हैं, सरलता से चटक सकते हैं।
9. रक्ताधान से पूर्व और पश्चात समुचित प्राचलों को अंकित करके रक्ताधान की प्रभावोत्पादकता का निर्धारण किया जा सकता है।
10. यदि कोई प्रतिक्रिया दिखाई दे तो उसे ध्यानपूर्वक नोट कर लेना चाहिए। उसकी सूचना दे देनी चाहिए। सभी गंभीर जटिलताओं की जांच की जानी चाहिए (रक्ताधान के पश्चात रक्त का नमूना लेना चाहिए और इसे बचे हुए रक्त अवयव तथा उपकरण के साथ सीरम-संबंधी असंगतता और बैक्टीरियल संवर्धन परीक्षणों के लिए ब्लड-बैंक को भेज देना चाहिए)।
11. यदि रक्ताधान प्रतिक्रियाएँ (TR) बार-बार हों तो ABO तथा Rh प्रणालियों के अतिरिक्त अन्य अनियमित एंटीबाडीज की उपस्थिति के लिए जाँच की जानी चाहिए। FNHTR बार-बार होने पर श्वेत कोशिका न्यूनीकृत अवयवों का प्रयोग करना चाहिए।
12. यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि कुछ जटिलताएँ विलंब से भी हो सकती हैं जैसे कि रक्ताधान के द्वारा संचारित किसी रोग की शुरुआत। जब यह पता चले कि दाता के सीरम की स्थिति में परिवर्तन (सीरोकन्वर्टिड) हुआ है तो वह रक्त जिस रोगी को दिया गया है उसका अनुवर्ती परीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए। ब्लड-बैंकों को गुणता-निश्चयन की व्यवस्था लागू करनी चाहिए जिससे प्रयोग किए जा रहे रक्त-अवयवों की गुणता की गारंटी मिल सके ऐसी व्यवस्था में निम्नलिखित बातें सुनिश्चित होनी चाहिए :
 1. दाताओं का चुनाव, रक्त लेना तथा रक्त अवयवों का उत्पादन प्रयोगशाला परीक्षण, भंडारण और वितरण उत्कृष्ट उत्पादन-रीति के सिद्धांतों के अनुसार किया जाए।
 2. इन कार्यों में संलग्न कर्मचारियों के कार्य और उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से निर्धारित होने चाहिए।
 3. उचित सामग्री का प्रयोग किया जाए।

4. आन्तरिक संपरीक्षण की व्यवस्था लागू होनी चाहिए ताकि गुणता-नियंत्रण की अनुप्रयोज्यता और प्रभावकारिता का मूल्यांकन नियमित रूप से किया जा सके।
5. त्रुटियों का पूरा विवरण दिया जाए और उनसे शिक्षा ली जाए।

यूरोप और अमरीका के कई अस्पतालों में रक्ताधान समितियाँ हैं जिनमें रक्ताधान सुविधाओं और रक्ताधान-संबंधित महत्वपूर्ण गतिविधियों से जुड़ी मुख्य नैदानिक इकाइयों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। ऐसी समितियाँ निम्नलिखित उपायों से रक्ताधान प्रक्रिया की प्रभावोत्पादकता और भी वृद्धि कर सकती हैं

1. स्थानीय नैदानिक गतिविधियों के अनुकूल रक्ताधान नीतियों का निरूपण करना।
2. रक्ताधान पद्धतियों का नियमित मूल्यांकन करना
3. रक्ताधान से संबंधित किसी भी अवांछित घटना का विश्लेषण करना और आवश्यक सुधारक उपाय करना।

अध्याय 4

लौह की अधिकता और आयरन कीलेटन जैसा कि इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में बताया जा चुका है, थैलासीमिया के कारण लौह शरीर में इकट्ठा हो जाता है। थैलासीमिया के रोगियों द्वारा लौह अवशोषित करने के दो मुख्य तरीके हैं : आहार से और रक्ताधान द्वारा दिए गए रक्त से। यदि इस अतिरिक्त लौह को निकाला न जाए तो यह यकृत और हृदय जैसे महत्वपूर्ण अंगों को क्षति पहुँचा सकता है। इसलिए थैलासीमिया के रोगियों द्वारा विशेष दवाओं, जिन्हें कीलेटर कहते हैं, का प्रयोग आवश्यक होता है, ये दवाएँ लौह को शरीर से बाहर निकालती हैं।

स्वस्थ शरीर में लौह का पुनःचक्रण

एक सामान्य स्वस्थ वयस्क के शरीर में लगभग 4 ग्रा. लौह जमा हो सकता है जिसमें से लगभग 3 ग्रा. लाल रक्त कोशिकाओं में हीमोग्लोबिन बनाने में काम आता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, जब लाल रक्त कोशिकाएँ परिपक्व होकर नष्ट हो जाती हैं तो उनका हीमोग्लोबिन इसके अवयवों हीम और ग्लोबिन में विभाजित हो जाता है। हीम से निकले हुए लौह को नई लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण के लिए और हीम बनाने के लिए एक प्रोटीन वाहक मॉलीक्यूल, ट्रांसफेरिन के द्वारा अंतरित कर दिया जाता है। ग्लोबिन प्रोटीन बनाने वाले रासायनिक पदार्थ अमीनो-अम्ल नई ग्लोबिन बनाने के लिए पुनः प्रयुक्त कर लिए जाते हैं।

इन प्रक्रियाओं का अर्थ है कि एक सामान्य स्वस्थ वयस्क में उपलब्ध लौह का अधिकांश शरीर द्वारा पुनः प्रयोग कर लिया जाता है तथा बाहर निकालने के बहुत कम बचता है। एक स्वस्थ वयस्क के शरीर से प्रतिदिन केवल 1 मि.ग्रा. लौह बाहर निकाला जाता है। इनमें से अधिकतर मल-मूत्र के द्वारा, त्वचा से और स्त्रियों में मासिक-स्राव के द्वारा निकाला जाता है। इस प्रकार शरीर से निकाले गए लौह की पूर्ति आँतों द्वारा आहार में से (4a) अवशोषित लौह के द्वारा हो जाती है।

थैलासीमिया में लौह की भूमिका

थैलासीमिया इन्टरमीडिया और थैलासीमिया मेजर के रोगी जिनका रक्ताधान नहीं हुआ है। उनका शरीर रोगी की गंभीर रक्ताल्पता की पूर्ति के लिए आँतों द्वारा सामान्य से काफी अधिक लौह का अवशोषण करता है। (2-5 ग्रा./वर्ष जबकि स्वस्थ व्यक्ति में यह 0.0015 ग्रा./वर्ष है) ताकि अधिक लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण हो सके। कितने अधिक लौह का अवशोषण होगा यह रक्ताल्पता की गंभीरता पर निर्भर करता है। रक्ताल्पता जितनी अधिक गंभीर होती है, अधिक लाल रक्त कोशिकाएँ बनाने के प्रयास में अस्थि-मज्जा इतना ही अधिक बढ़ जाता है और इस प्रकार इसकी लौह की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। आँतों से अवशोषित होने वाले लौह की मात्रा को निश्चित करने में अन्य कारकों की भूमिका भी हो सकती है। उदाहरण के लिए विटामिन सी की उपस्थिति लौह का अवशोषण बढ़ा देती है जबकि चाय तथा कुछ अनाज इसमें कमी कर देते हैं। तथापि आँतों से लौह के अवशोषण को कम करने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका है रोगियों में हीमोग्लोबिन का अच्छा स्तर बनाए रखना इसलिए यह आवश्यक है कि रोगियों को नियमित रक्ताधान मिले जिससे उनका हीमोग्लोबिन स्तर 9 ग्रा./डेसी लि. से अधिक (रक्ताधान से पूर्व) बना रहे। जिन रोगियों में रक्ताधान कम होता है उनमें आँतों से 1-5 मि.ग्रा. प्रतिदिन (या लगभग 0.4-2 ग्रा. प्रति वर्ष) अतिरिक्त लौह का अवशोषण होता है।

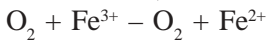
रक्ताधान ले रहे रोगियों में लौह की अधिकता का मुख्य स्रोत रक्ताधान द्वारा लिया गया रक्त होता है। वास्तव में लौह की जो मात्रा रोगी रक्ताधान के माध्यम से अवशोषित करता है वह आहार में से आँतों द्वारा अवशोषित लौह की मात्रा से कहीं अधिक होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि नियमित रक्ताधान ले रहे रोगी आयरन कीलेटर्स का प्रयोग करें—ये दवाएँ लौह को संयुक्त करके शरीर से बाहर निकाल देती हैं। प्रत्येक मिलीलिटर (ml) लाल रक्त कोशिकाओं में लगभग 1.16 मि.ग्रा. लौह होता है। रक्त की एक औसत यूनिट में लगभग 250 मि.लि. पैकड लाल कोशिकाएँ होती हैं—अर्थात् 250 x 1.16 या 200-290 मि.ग्रा. लौह। इन लाल रक्त कोशिकाओं के टूटने से निकलने वाला लौह जीवनपर्यन्त रक्ताधान लेने वाले रोगियों के शरीर में जमा होने वाले लौह का प्रमुख स्रोत होता है। उदाहरण के लिए जो रोगी 30 यूनिट रक्त प्रतिवर्ष ले रहा है उसमें एक वर्ष में लगभग 6 ग्राम (200 x 30 = 6000 मि.ग्रा. = 6 ग्राम) लौह या प्रतिदिन लगभग 15-16 मि.ग्रा. लौह की अधिकता हो जाएगी। शरीर अतिरिक्त लौह की इतनी अधिक मात्रा को बाहर निकालने में असमर्थ रहता है इसलिए यह शरीर के ऊतकों और अंगों में इकट्ठा हो जाता है। यदि यह लौह चिकित्सा उपायों के द्वारा शरीर से निकाला नहीं गया तो अत्यंत हानिकारक हो सकता है जिसके कारण B थैलासीमिया मेजर की सर्वाधिक गंभीर जटिलताएँ उत्पन्न हो सकती हैं। लौह की अधिकता के रोग-विषयक लक्षण सामान्यतः 10 वर्ष की आयु में प्रकट होते हैं हालाँकि यकृत में लौह की विषाक्तता के प्रमाण काफी छोटी आयु के बच्चों में भी मिले हैं। यकृत को होने वाली क्षति जिसे फाइब्रोसिस कहते हैं रक्ताधान शुरू करने के दो वर्षों में होने लगती है। यकृत को होने वाली गंभीर क्षति (सिरोसिस) 10 वर्ष की आयु से पहले ही आरंभ हो सकती है यदि अतिरिक्त लौह को निकालने की चिकित्सा आरंभ नहीं की जाती है। विशेष रूप से बकि रोगी को हीपेटाइटिस B और /अथवा सी हो। रक्ताधान के 10 वर्षों के अन्दर हृदय रोगों का विवरण भी मिलता है जोकि थैलासीमिया मेजर में मृत्यु के सबसे आम कारणों में से एक है। हालाँकि हार्टफेल प्रायः 15 वर्ष की आयु से पहले नहीं होता।

लौह की अधिकता थैलासीमिया के रोगियों में विलंबित यौन परिपक्वता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है जिससे स्त्री और पुरुष दोनों ही रोगियों में से लगभग आधे रोगी प्रभावित रहते हैं। इसके अतिरिक्त लौह की अधिकता गर्भ धारण का प्रयास कर रही महिलाओं के लिए कठिनाई उत्पन्न कर सकती है (लगभग 25 प्रतिशत केसों में) और यह डायबिटीज मेलिटस होने का भी एक सामान्य कारण है।

लम्बे समय में अतिरिक्त लौह हड्डियों में जटिलताएँ उत्पन्न करता है और थॉयराइड तथा पैराथायराइड जैसे महत्वपूर्ण अंगों में क्षति का कारण बनता है। इसलिए रोगियों को अतिरिक्त लौह निकालने के लिए चिकित्सा अवश्य करवानी चाहिए अन्यथा यह शरीर में इकट्ठा होकर रोगी के जीवन के स्वरूप और अवधि को गंभीर रूप से प्रभावित कर देगा। अतिरिक्त लौह शरीर को कैसे क्षति पहुँचाता है :

स्वयं थैलासीमिया का रक्ताधान चिकित्सा या दोनों ही के कारण जब लौह शरीर में जमा हो जाता है तो रक्त की मुख्य लौह वाहक प्रोटीन ट्रांसफेरिन लौह से संतृप्त हो जाती है। लौह-युक्त ट्रांसफेरिन की उपलब्धता के अभाव में, असंयुक्त लौह जो शरीर के लिए अत्यंत हानिकारक होता है, रक्त के साथ संचरित होने लगता है। लौह ऊतकों और प्रोटीन संचायक अणुओं जिन्हें फेरिटिन (4c) कहते हैं तथा हीमोसिडेरिन के साथ संयुक्त होकर भी जमा हो जाता है। इन प्रोटीनों में जमा लौह असंयुक्त लौह से कम हानिकारक होता है। हालाँकि फेरिटिन और हीमोसिडेरिन शरीर में निरंतर नष्ट होती रहती हैं तो इनसे भी कुछ असंयुक्त लौह निकलता है तथा रोगी के अस्वस्थ होने पर संचालक प्रोटीनों से भी लौह निकल सकता है। जब लौह को संयुक्त करने के लिए शरीर में ट्रांसफेरिन उपलब्ध नहीं होती तो इस प्रकार बचा हुआ ट्रांसफेरिन से असंयुक्त लौह अस्थायी होता है। इसका अर्थ यह है कि यह बड़ी सरलता से एक ऋण आवेश, जिसे इलेक्ट्रॉन कहते हैं ले या दे सकता है। जब लौह एक इलेक्ट्रॉन लेता है तो यह तीन धन आवेश (लौह का एक प्रकार जिसे 3+ या फेरिक कहते हैं) से बदलकर दो धन आवेश वाला (लौह का एक प्रकार 2+ या फेरस) हो जाता है। जब लौह 2+ और 3+ अवस्थाओं के बीच गति करता है तो यह हानिकारक पदार्थ बनाता है जिन्हें फ्री रैडिकल कहते हैं, ये शरीर के ऊतकों को व्यापक क्षति पहुँचा सकते हैं। सर्वाधिक ज्ञात प्रक्रिया जिससे मुक्त मूलक (फ्री रैडिकल) उत्पन्न होते हैं, फेन्टन प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है। यह एक रासायनिक प्रक्रिया है जिसे इस प्रकार सरलता से समझा जा सकता है :

हाइड्रॉक्सिल मूलक (HO) बनना



डिसफेरिऑक्सामिन (DFO) या डिसफेराल लौह को निकालने का शरीर में कोई प्रभावी तरीका नहीं होता इसलिए अतिरिक्त लौह को निकालने का एक मात्र तरीका है आयरन कीलेटर्स (लौह योजक) नामक दवाओं का प्रयोग करना जो लौह के साथ मिलकर एक यौगिक बना लेती है जिसे मल-मूत्र के माध्यम से शरीर से बाहर निकाला जा सकता है। डिसफेरिऑक्सामिन (DFO) उत्पादित की जाने वाली पहली आयरन कीलेटन दवा थी।

1960 के दशक में पहली बार उत्पादित DFO (4d) को थैलासीमिया मेजर की चिकित्सा के लिए 1970 के प्रारंभ में बाजार में उतारा गया। DFO दो प्रकार से कार्य करती है—पहली एक धीमी प्रक्रिया है जिसमें DFO लौह को संयुक्त करके (कीलेटन) फेरिऑक्सामिन नामक पदार्थ बनाती है (4e) जिसे शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। दूसरी प्रक्रिया तेज प्रक्रिया है जिसमें DFO मुक्त मूलकों (फ्री रेडिकल) का सफाया करके शरीर में लौह की विषाक्तता को कम करने का कार्य करती है। DFO शरीर में लौह के दो मुख्य स्रोतों या संग्रहों से लौह का कीलेटन करती है। लौह का पहला संग्रह लाल रक्त कोशिकाओं के विघटन से बनता है। यह संग्रह DFO द्वारा कीलेटन के बाद मूत्र के द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। लौह का दूसरा संग्रह जिसका DFO द्वारा कीलेटन किया जाता है। यकृत में होता है लौह का संचय करने वाला शरीर का सबसे बड़ा अंग है। यकृत में संग्रहीत लौह यकृत की कोशिकाओं (हीपेटोसाइट्स) में दो पदार्थों फेरिटिन और हीमोसिडेरिन का विघटन होने पर निकलता है। हीपेटोसाइट्स में मौजूद DFO तब लौह के साथ संयुक्त हो जाता है और मल द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। ट्रांसफेरिन के साथ पहले से संयुक्त लौह DFO के साथ संयुक्त नहीं होता।

DFO का प्रत्येक अणु लौह के एक परमाणु के साथ संयुक्त होकर फेरिऑक्सामिन बनाता है (4c)। इसका अर्थ यह है कि यदि DFO 100 प्रतिशत प्रभावी हो तो प्रति एक ग्राम DFO के द्वारा लगभग 93 मि.ग्रा. लौह निकाला जाना चाहिए। हालाँकि यह वास्तविकता नहीं है। इसके प्रभाव का स्तर DFO की खुराक, इसको दिए जाने के ढंग, संचित लौह की मात्रा, शरीर में विटामिन सी के स्तर तथा रोगी सुझायी गई कीलेटन चिकित्सा का अनुपालन किस हद तक करता है, इन सब बातों पर निर्भर करता है।

विटामिन सी की भूमिका—विटामिन सी एक अपचायक है (रिड्यूसिंग एजेंट) अर्थात् यह लौह को लौह 3+ से और 2+ में परिवर्तित होने में सहायता करती है। यह बहुत आवश्यक है क्योंकि लौह 2+ लौह 3+ की अपेक्षा शरीर में अधिक आसानी से गति करता है और यह लौह का वह प्रकार भी है जो कीलेटर जैसे कि DFO से बहुत आसानी से संयुक्त हो जाता है। इस कारण से लौह 2+, फेरस लौह को प्रायः कीलेटन-योग्य लौह कहा जाता है जबकि लौह 3, फेरिक लौह अचल लौह शरीर के संचायक भागों जैसे कि यकृत में

वाहक प्रोटीनों फेरिटिन और हीमोसिडेरीन साथ संयुक्त अवस्था में पाया जाता है। इन प्रोटीनों से मुक्त होने वाले लौह की मात्रा बढ़ाने का एक तरीका है DFO के साथ विटामिन सी पूरक दिया जाता। विशेषज्ञों की सलाह है कि थैलासीमिया के रोगियों को विटामिन सी प्रतिदिन लेनी चाहिए, आदर्श रूप में तो इसे DFO लेने के समय ही लिया जाना चाहिए। आमतौर पर यह सलाह दी जाती है कि रोगियों को विटामिन से लेना तभी शुरू करना चाहिए जब उन्हें DFO लेते हुए कुछ सप्ताह हो गए हों।

विटामिन सी की उपयुक्त दैनिक मात्रा 10 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए 50 मि.ग्रा. और बड़े बच्चों के लिए 100 मि.ग्रा. है। विटामिन सी की मात्रा 200 मि.ग्रा./प्रतिदिन से अधिक नहीं होनी चाहिए। जिन रोगियों के आहार में संतरे या फलों का ताजा रस नियमित रूप से शामिल होता है उन्हें अतिरिक्त विटामिन सी पूरकों की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। उदाहरण के लिए एक बड़े संतरे में 75 मि.ग्रा. विटामिन सी होती है जबकि 100 मि.ली. संतरे के ताजा रस में 50 मि.ग्रा. विटामिन सी होती है।

अन्य औषधियों और पूरकों की तरह विटामिन सी की मात्रा भी चिकित्सक की सलाह से निश्चित करनी चाहिए। यह जानना आवश्यक है कि अत्यधिक विटामिन सी रोगी के स्वास्थ्य पर विषाक्त प्रभाव डाल सकती है क्योंकि यह लौह की मात्रा को अत्यधिक बढ़ा देती है। इसलिए विटामिन सी पूरक उन रोगियों के लिए विशेष रूप से हानिकारक हो सकते हैं जो DFO नहीं ले रहे हों क्योंकि विटामिन सी के कारण बढ़ा हुआ लौह असंयुक्त अवस्था में रहता है और ऊतकों को क्षति पहुँचा सकता है।

आयरन कीलेटन चिकित्सा कब आरंभ करनी चाहिए थैलासीमिया मेजर के रोगियों को DFO चिकित्सा नियमित रक्ताधान शुरू हो जाने के बाद ही शुरू करनी चाहिए। DFO अपर्याप्त रक्ताधान चिकित्सा के कारण होने वाली समस्याओं जैसे कि रक्ताल्पता, अस्थि मज्जा में परिवर्तन या यकृत और झिल्ली के आकार में वृद्धि का समाधान नहीं करती। जिन रोगियों में रक्ताधान नहीं हो रहा है या कम हो रहा है उन्हें 10 वर्ष की आयु से पहले या लौह की अधिकता का प्रमाण मिलने से पहले DFO नहीं दी जानी चाहिए।

सामान्यतः नियम यह होना चाहिए कि रोगियों की कीलेटन चिकित्सा तभी शुरू की जाए जब वे 10-20 रक्ताधान ले चुके हों या उनका फेरिटिन स्तर 1000 माइक्रोग्राम/लि. से अधिक हो जाए।

डेसफेरिऑक्सामिन कैसे बनाएँ, इसका भंडारण और प्रयोग कैसे करें।

DFO की अत्यधिक मात्रा के प्रयोग से होने वाले विषैले प्रभावों से बचते हुए शरीर में से लौह को प्रभावी ढंग से निकालने के लिए DFO देने का सबसे अच्छा तरीका क्या है इस पर सहमत होने में चिकित्सकों और वैज्ञानिकों को रोग-विषयक अनुभव के 30 वर्षों से भी अधिक का समय लगा।

DFO के अणुओं का आकार बढ़ा होने के कारण शरीर में अणुओं के द्वारा इनका अवशोषण नहीं हो पाता है। इसलिए DFO देने की सबसे अच्छी विधि है त्वचा के नीचे या शिरा के माध्यम से देना। और क्योंकि DFO क्त में से जल्दी निकाल दिया जाता है इसलिए इस दवा को धीरे-धीरे एक लम्बे समय में दिया जाता है ताकि जितनी अधिक देर तक संभव हो रक्त में इसकी मात्रा एक समान बनी रहे। DFO एक विशेष रूप से तैयार किए गए पम्प के द्वारा 8-10 घंटों तक कम से कम सप्ताह में 6 दिन त्वचा के नीचे दी जाती है। प्रत्येक रोगी के लिए दवा की ठीक-ठीक मात्रा का निश्चय रोगी के शरीर में लौह की अधिकता और उसकी रोग-दशा के आधार पर किया जाता है। सामान्यतः बच्चों में इसकी औसत मात्रा शरीर के भार के अनुसार 20-40 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से अधिक नहीं होनी चाहिए क्योंकि इसकी अधिक मात्रा शारीरिक विकास को मंद कर सकती है। वयस्कों के लिए इसकी सामान्य मात्रा शरीर के भार के अनुसार 30-50 मि.ग्रा./कि.ग्रा. है।

DFO बनाने की विधि

DFO एक सूखा सफेद पाउडर है। यह 500 मि.ग्रा. और 2 ग्राम की यूनिटों में मिलता है। प्रत्येक यूनिट शीशे की छोटी बोतल या वॉयल में सूखे सफेद पाउडर के रूप में होती है। इसे प्रयोग से पहले 10 प्रतिशत घोल में बना लिया जाता है। उदाहरण के लिए 500 ग्राम के एक वॉयल से DFO का 10 प्रतिशत घोल बनाने के लिए पाउडर में 5 मि.ली. डिस्टिलड वाटर मिलाना चाहिए। (डिस्टिलड वाटर केमिस्ट के यहाँ मिलता है) फिर इसे कुछ मिनटों के लिए रखा रहने दें ताकि पाउडर घुल जाए। ध्यान रखें, पाउडर को घोलने के लिए वॉयल को हिलाएँ नहीं इसे हथेली पर या किसी समतल सतह जैसे कि मेज पर बेलन की तरह घुमाएँ। जब पाउडर घुल जाए तो इसे सीरिंज में भरकर बैटरी से चलने वाले एक छोटे से पम्प में लगा दें। पम्प सिरिंज के प्लंजर को धीरे-धीरे दबाकर दवा को एक निश्चित समय तक जोकि 8-12 घंटे है, शरीर में भेजता रहता है।

निश्चित किए गए घंटों की संख्या के अनुसार सीरिंज खाली हो जाती है। आमतौर पर प्रयोग किए जाने वाले कुछ पम्पों में अन्दर ही एक अलार्म लगा होता है जो सीरिंज अटक जाने पर या दवा समाप्त हो जाने पर आवाज करता है।

DFO को कैसे रखें

DFO के तैयार घोल को कमरे के तापमान (23°C) पर अधिकतम 24 घंटों तक रखा जा सकता है। गर्म जलवायु में तैयार घोल को किसी ठंडे स्थान पर रखना आवश्यक होता है और यदि तुरन्त प्रयोग न करना हो तो इसे 4°C पर फ्रिज में रखना चाहिए। घोल को लगभग पाँच दिनों तक फ्रिज में रखा जा सकता है। और यदि घोल धुंधला और बदरंग हो जाए तो इसे तुरंत फेंक देना चाहिए। सबसे अच्छा तो यह रहता है कि DFO के घोल को प्रयोग करने से लगभग दो घंटे पहले फ्रिज से निकाला जाए और इसे शरीर के तापमान

पर आने दिया जाए।

DFO को त्वचा के नीचे या शिरा के माध्यम से देने के लिए विशेष रूप से संक्रमण रहित वातावरण में केमिस्ट द्वारा भी प्री-मिक्स किया जा सकता है। प्री-मिक्स किया गया DFO 4°C पर 2 सप्ताह तक स्थायी रहता है।

परन्तु यदि DFO केमिस्ट के द्वारा नहीं बल्कि रोगी के द्वारा प्री-मिक्स किया गया हो तो इस घोल को एक या दो दिन से ज्यादा नहीं रखना चाहिए क्योंकि इसके रोगाणुरहित न होने की संभावना होती है और इस प्रकार का दूषित घोल प्रतिक्रिया (रिएक्शन) उत्पन्न कर सकता है।

DFO को त्वचा के नीचे देना

त्वचा के नीचे DFO देने के लिए, DFO की सीरिंज को पम्प में लगा दिया जाता है और फिर इसे प्लास्टिक की पतली नली से जोड़ देते हैं जिसके सिरे पर बहुत पतली सुई लगी होती है, इस सुई को त्वचा के नीचे प्रवेश करा दिया जाता है फिर DFO को त्वचा और माँसपेशी के बीच की जगह में या इसके नीचे की चर्बी में जाने दिया जाता है।

पिछले कुछ वर्षों में पम्प पुराने मॉडलों की तुलना में काफी छोटे, हल्के और कम आवाज करने वाले हो गए हैं। इसलिए इन पर आसानी से ध्यान भी नहीं जाता जिसके कारण इन्हें कपड़ों के नीचे छिपाकर दिन भी इच्छापूर्वक लगाए रखना आसान हो गया है। फिर भी कुछ रोगी पम्प रात के समय लगाना पसंद करते हैं ताकि इससे उनके दिन के काम-काज में बाधा न पड़े।

थैलासीमिया के रोगियों के स्वास्थ्य को ठीक रखने में DFO के नियमित प्रयोग की एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। परन्तु DFO द्वारा आयरन कीलेटन चिकित्सा एक कठिन कार्य है—यह कष्टदायक और समय लेने वाली है तथा इसे दैनिक जीवन में निभा पाना मुश्किल है। इसलिए यह आवश्यक है कि रोगी की देखभाल से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति डॉक्टर, नर्स, माता-पिता और सबसे महत्वपूर्ण रूप से रोगी स्वयं इस चिकित्सा को यथासंभव सरल बनाने के उपाय ढूँढ़ें। इस चिकित्सा को अधिक तर्कसंगत बनाने के प्रयासों की किशोर रोगी विशेष रूप से सराहना करेंगे। DFO से जुड़ी सीमित प्रतिक्रियाओं और अन्य जटिलताओं को यथासंभव कम करने के प्रयास भी किए जाने चाहिए। (आगे देखेंगे)

DFO देने के अन्य तरीके

ऊपर बताए गए त्वचा के नीचे दिए जाने के तरीके के अतिरिक्त DFO देने के और भी कई तरीके हैं जिनके कुछ लाभ और कुछ हानियाँ हैं।

अनवरत 24 घंटे अंतःशिरा निषेचन इस विधि में DFO एक शिरा के माध्यम से दिया जाता है। लौह की चिंताजनक अधिकता और इससे जुड़ी हृदय संबंधी जटिलताओं से पीड़ित रोगियों के लिए यह विधि जीवन-रक्षक हो सकती है क्योंकि यह निषेचन के साथ-साथ ही शरीर में लौह की विषाक्तता को कम करती जाती है और अन्य विधियों की अपेक्षा लौह की बड़ी मात्रा अधिक शीघ्रता से बाहर निकालती है। तथापि अनवरत अंतःशिरा निषेचन में काफी जोखिम भी हैं, विशेष रूप से संक्रमण और शिरा में डालकर छोड़ी गई लाइन के कारण रक्त के थक्के मने का जोखिम (अनवरत अंतःशिरा निषेचन द्वारा DFO देने के विषय में नीचे दिया गया अनुच्छेद देखें) इस विधि का उपयोग उन विशिष्ट केसों में ही करना चाहिए जहाँ रोगियों में निम्नलिखित लक्षण पाए जाएँ :

- (1) लौह की चिंताजनक अधिकता—अर्थात् फेरिटिन का स्तर > 2500 मी.ग्रा./ली. बना रहना और/अथवा यकृत में लौह का स्तर > 15 मा.ग्रा./ग्रा./शुष्क यकृत भार, यकृत की बायोप्सी द्वारा प्रमाणित
- (2) लौह की अधिकता के कारण हृदय संबंधी जटिलताएँ
- (3) गर्भधारण का इरादा रखने वाली महिला रोगी जिनके रक्त में फेरिटिन का स्तर अधिक और/अथवा यकृत में लौह का स्तर (LIC) अधिक हो
- (4) अनवरत अंतःशिरा निषेचन के विषय में उन रोगियों के लिए भी सोचा जा सकता है जिनके शरीर में लौह निकाला जाना अत्यंत आवश्यक हो गया हो इसमें फेरिटिन के स्तर या LIC से कोई अन्तर नहीं पड़ता जैसे कि अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण से पहले या दीर्घकालिक सक्रिय हेपेटाइटिस के रोगियों में DFO के अनवरत अंतःशिरा निषेचन में इसे सप्ताह में सातों दिन 50 मि.ग्रा./कि.ग्रा. प्रतिदिन लगाता दिया जाता है जिसके लिए एक विशेष वितरण प्रणाली का उपयोग किया जाता है जिसे इन ड्रवैलिंग कैथेटर कहते हैं। यह रोगी के शरीर में स्थापित एक उपकरण है जो एक मुख्य शिरा तक पहुँच उपलब्ध कराता है।

इस प्रकार का कैथेटर अपेक्षया महंगा होता है और जिन रोगियों में इसका उपयोग होता है उनको अत्यन्त सूक्ष्म और सावधानीपूर्वक चिकित्सीय निरीक्षण की आवश्यकता होती है। आयरन कीलेटन की इस विधि से जुड़ी सर्वाधिक सामान्य जटिलता है गंभीर संक्रमण और कभी कभी रक्त के धक्के जमना (थ्रोम्बोसिस)। शिरावरोध को रोकने के लिए विशेष दवाएँ (स्कंदनरोधी) दी जा सकती हैं तथा संक्रमणों की रोकथाम के लिए कैथेटर के आसपास की त्वचा को स्वच्छ रखने पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। रोगियों को यह भी सिखाया जाना चाहिए कि वे त्वचा को स्वच्छ कैसे रखें और उन्हें यह ध्यान दिलाना चाहिए कि कोई प्रतिकूल लक्षण प्रकट होने पर जैसे कि ठण्ड लगना, ज्वर या किसी तकलीफ का अनुभव हो या त्वचा लाल हो जाए तो तुरंत डॉक्टर की सलाह लें।

8-12 घंटे अंतःशिरा निषेचन

ऊपर बताए गए अनवरत 24 घंटे अंतःशिरा निषेचन की तरह 8-12 घंटे अंतःशिरा निषेचन भी अधःत्वचा निषेचन का एक अन्य विकल्प है और इसे अधः त्वचा निषेचन से गंभीर सीमित समस्याओं वाले रोगियों में प्रयोग किया जा सकता है। निषेचन की मात्रा (40-50 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन), अवधि (8-12 घंटे) और आवृत्ति (सप्ताह में पाँच दिन से अधिक) अधःत्वचा निषेचन के समान ही है फिर भी लौह की गंभीर अधिकता और इससे जुड़ी हृदय संबंधी जटिलताओं के रोगियों में यह विधि 24 घंटे अनवरत अंतःशिरा निषेचन के समान प्रभावकारी नहीं है।

यह जान लेना आवश्यक है कि DFO का अंतःशिरा प्रयोग सावधानीपूर्वक आरंभ करना चाहिए और वह भी केवल वहीं जहाँ इसकी आवश्यकता हो। इस विधि के अधिक समय तक प्रयोग से रक्ताधान के लिए अत्यंत आवश्यक शिराओं को क्षति हो सकती है और इसमें संक्रमण की संभावना भी अधिका होती है।

रक्ताधान के दौरान डेसफेरिऑक्सामिन का अंतःशिरा निषेचन

कुछ चिकित्सा केन्द्रों में रोगी द्वारा रक्ताधान लिए जाने के समय ही उसकी शिरा में DFO दे दिया जाता है। हालाँकि DFO रोगी को दिए जा रहे रक्त में कभी सीधे नहीं मिलाना चाहिए इससे रक्त संदूषित हो सकता है अथवा कोई प्रतिक्रिया हो सकती है। सामान्यतः रोगी को दिए जा रहे रक्त में कोई पदार्थ मिलाना नहीं चाहिए जब कि वैज्ञानिक रूप से यह प्रमाणित न हो गया हो कि इससे कोई हानि नहीं हो सकती।

रक्ताधान के दौरान शिरा के माध्यम से DFO देने के लिए, DFO की आवश्यक मात्रा को नार्मल सेलाइन नामक एक घोल में घोल लिया जाता है। DFO के घोल की थैली की सूई को रक्त की थैली के 'y' कनेक्टर में लगा दिया जाता है, जिसे रोगी को लगभग 4 घंटे की अवधि में दिया जाना होता है। यदि ठीक लगे तो निषेचन के लिए पम्प का प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः DFO की एक खुराक ठीक से देने के लिए जितने समय की आवश्यकता होती है वह एक रक्ताधान के लिए आवश्यक समय से अधिक होता है।

यह जानना आवश्यक है कि केवल रक्ताधान के दौरान अर्थात् प्रति एक सप्ताह में एक बार दी जाने वाली DFO का अत्यन्त सीमित प्रभाव होता है। हालाँकि जहाँ DFO की उपलब्धता कम है वहाँ यहीं एकमात्र विकल्प हो सकता है। दूसरी ओर कुछ चिकित्सा केन्द्र रोगी की आयरन कीलेटन चिकित्सा के प्रभाव के और बेहतर करने के उद्देश्य से रोगी की सामान्य दैनिक चिकित्सा के अतिरिक्त रक्ताधान के दौरान भी शिरा के माध्यम से DFO देते हैं।

DFO का अंतःपेशी इंजेक्शन

थैलासीमिया की चिकित्सा में जब पहली बार DFO का प्रयोग आरंभ किया गया था तो यह अंतःपेशी इंजेक्शन के रूप में दिया जाता था। तथापि बाद में यह पाया गया है कि यह विधि अधःत्वचा या अंतःशिरा निषेचन जितनी प्रभावी नहीं है। कुछ केसों में अब भी अंतः पेशी इंजेक्शन दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए उन देशों में जहाँ डेसफेरिऑक्सामिन अत्यधिक मँहगी है और इसलिए बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है या जहाँ इन्फ्यूजन पंप उपलब्ध नहीं हैं। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि डेसफेरिऑक्सामिन बिल्कुल ही न मिलने से तो चाहे थोड़ी मात्रा में ही सही और किसी विधि से डेसफेरिऑक्सामिन मिलने से रोगियों की दशा बेहतर रहती है।

इसलिए यदि कोई और विकल्प न हो तो DFO अंतःपेशी इंजेक्शन द्वारा दी जा सकती है।

एक अन्य विधि में 500 मि.ग्रा. DFO को 5 मि.ली. डिस्टिलड वाटर में घोलकर हाथ या पैर की किसी माँसपेशी में इंजेक्शन द्वारा लगा दिया जाता है। इसकी मात्रा को दो भागों में बाँटकर प्रतिदिन दो बार दिया जाता है। हाल ही में कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने इस विधि को काफी कारगर बताया है।

(b) DFO चिकित्सा की प्रभाविता का मूल्यांकन

रोगी की चिकित्सा योजना की प्रभाविता के मूल्यांकन का एक तरीका है यकृत तथा शरीर के अन्य ऊतकों में संचित लौह की मात्रा का आकलन करना।

यकृत में एक बड़ी मात्रा में लौह को संचित करने की क्षमता होती है। यह शरीर के लौह संचय का 70 प्रतिशत या इससे भी अधिक अर्थात् लगभग 20 ग्राम लौह संचित कर सकता है। शरीर में जितना भी अतिरिक्त लौह होता है वह यकृत में या यकृत में स्थान न होने पर अन्य ऊतकों में जमा हो जाता है। यकृत तथा अन्य ऊतकों में जमा लौह फेरिटिन और हीमोसिडेरीन प्रोटीनों के साथ संयुक्त हो जाता है जिस प्रकार रक्त में उपस्थित लौह वाहक प्रोटीन ट्रांसफेरिन से संयुक्त होता है। फेरिटिन की थोड़ी सी मात्रा यकृत से निकलकर रक्त के प्रवाह में आ जाती है। रक्त में फेरिटिन के स्तर से लौह की अधिकता का निर्धारण किया जाता है।

रक्त में फेरिटिन का सामान्य स्तर (सीरम फेरिटिन) पुरुषों के लिए 250 मा.ग्रा./ली. और स्त्रियों के लिए 10-120 मा.ग्रा./ली. होता है। रक्त में 1 मा.ग्रा. फेरिटिन शरीर में 8 मि.ग्रा. लौह संचय के समान माना जाता है। अतः थैलासीमिया मेजर के रोगियों में जिनके शरीर में लौह का स्तर काफी अधिक होता है, फेरिटिन का स्तर भी काफी अधिक होने की अपेक्षा होती है।

यद्यपि फेरिटिन का स्तर यकृत में लौह के संचय का विश्वसनीय सूचक हो सकता है पर यह अन्य अंगों जैसे कि हृदय या पूरे शरीर के लौह की अधिकता के अनुमान में उतना सटीक नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य कारक जैसे कि शोथ, वायरल या बैक्टीरियल संक्रमण, दीर्घकालिक यकृत रोग, संधि शोथ (आर श्राइटिस) और विटामिन सी की कमी रक्त में फेरिटिन के स्तर को प्रभावित कर सकती है जिससे संचित लौह की सूचित मात्रा वास्तविक मात्रा से अधिक या कम हो सकती है। फिर भी रक्त में फेरिटिन के स्तर को लौह-संबंधी जटिलताओं का सबसे उपयोगी सूचक माना जाता है।

उदाहरण के लिए कुछ अध्ययनों से यह पता चला है कि जिन रोगियों में फेरिटिन का स्तर कई वर्षों तक नियमित रूप से 2500 मा.ग्रा./ली. से कम रहा उनमें हृदय संबंधी जटिलताएँ उत्पन्न होने की संभावना भी कम रही। इसलिए लक्ष्य यह होना चाहिए कि फेरिटिन का स्तर 1000-2000 मा.ग्रा./ली. पर बनाए रखा जाए और कम से कम तीन महीने में एक बार फेरिटिन के स्तर की जाँच की जाए ताकि यह पता चल सके कि रोगी की आयरन कीलेटन चिकित्सा योजना में किसी बदलाव की आवश्यकता तो नहीं है। DFO से संबंधित विषाक्तता के लक्षणों की मानीटर करना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विषाक्तता तब उत्पन्न होती है जब DFO की खुराक की मात्रा अधिक हो या जब फेरिटिन का स्तर 1000 मा.ग्रा./ली. से कम हो जाए।

DFO की मात्रा के निर्धारण में फेरिटिन के स्तर का उपयोग

नीचे दिए गए समीकरण थेराप्यूटिक इंडेक्स (T1) के प्रयोग द्वारा किसी रोगी के लिए DFO की अभीष्ट मात्रा का निर्धारण करने के लिए फेरिटिन स्तर का उपयोग किया जा सकता है।

$T = \text{औसत दैनिक मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)}$

$\text{सीरम फेरिटिन (मि.ग्रा./ली.)}$

लक्ष्य है T1 का मान हमेशा 0.025 से कम बनाए रखना।

DFO की दैनिक मात्रा की गणना करने के लिए प्रत्येक उपचार में दी गई दैनिक मात्रा को प्रति सप्ताह दी गई खुराकों की कुल संख्या से गुणा करके 7 (सप्ताह में दिनों की संख्या) से भाग देना चाहिए।

हाल के कुछ वर्षों में कई अन्य परीक्षण भी विकसित किए गए हैं, शरीर में लौह की मात्रा मापने के लिए जिनका विश्वसनीयता से उपयोग किया जा सकता है।

इन परीक्षणों के साथ-साथ प्रायः सीरम फेरिटिन स्तर भी नापा जाता है ताकि शरीर में, विशेष रूप से यकृत और हृदय में लौह की अधिकता की अधिक सटीक जानकारी प्राप्त हो सके।

यकृत में लौह की सांद्रता (LIC)

यकृत में लौह की सांद्रता को नापने के लिए यकृत के ऊतक में से कोशिकाएँ निकाली जाती हैं। इस प्रक्रिया को लिवर बायोप्सी कहते हैं। फिर इन कोशिकाओं में संचित लौह की मात्रा को नापा जाता है। लिवर बायोप्सी में एक विशेष प्रकार की सुई पेट से होकर यकृत में डाली जाती है। यह कार्य सामान्यतः (लोकल एनस्थीसिया) उस स्थान को सुन्न करके प्रायः अल्ट्रासाउंड की सहायता से किया जाता है। फिर उस सुई के माध्यम से यकृत के ऊतक का एक छोटा-सा अंश निकाल लिया जाता है। लौह की मात्रा का ठीक-ठीक निर्धारण कुछ तो ऊतक के नमूने की मात्रा (कम से कम 1 मि.ग्रा. शुष्क भार) और कुछ उसके प्रकार (अर्थात् सिरोसिस और फाइब्रोसिस की अनुपस्थिति) पर निर्भर करता है, और इसलिए इस प्रक्रिया को करने वाले मैडिकल स्टाफ की निपुणता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि लिवर बायोप्सी यदि अस्पताल के वातावरण में अल्ट्रासाउंड की सहायता से की जाए तो इसमें जटिलताओं की दर काफी कम होती है फिर भी यह एक अंतर्वेधी (इन्वेसिव) प्रक्रिया है, इसके लिए रोगी अथवा उसके माता-पिता/संरक्षक की पूर्ण सहमति आवश्यक होती है। अनुसंधानों में यह जानकारी मिली है कि जब यकृत में लौह का स्तर नियमित रूप से 7 मि.ग्रा./यकृत का शुष्क भार (ग्रा.) से अधिक लौह स्तर हृदय-मृत्यु के उच्च जोखिम का कारण हो सकता है। हालांकि यह प्रमाणित करने के लिए कि यकृत में लौह की सांद्रता के ऊपर दिए गए मान क्या विश्वसनीयता के साथ हृदय-संबंधी जोखिमों के कम या अधिक होने की जानकारी देते हैं, अनुसंधान किए जा रहे हैं। जैसा कि सीरम फेरिटिन के विषय में वैज्ञानिकों ने संदेह प्रकट किया है, क्या ये विधि शरीर में लौह की कुल अधिकता को और विशेष रूप से हृदय में लौह के जमाव को ठीक-ठीक प्रदर्शित करती है। हाल के अनुसंधानों से यह जानकारी मिलती है कि शरीर में लौह की अधिकता का सबसे विश्वसनीय नाप यकृत में लौह की सांद्रता को 10.6 मि.ग्रा. शरीर का भार (कि.ग्रा.) के गुणक से गुणा करने पर प्राप्त होता है। लिवर बायोप्सी से यकृत की कोशिकाओं जैसे कि हीपेटोसाइट्स और कुपकर कोशिकाओं के बीच लौह के वितरण और इसके साथ ही यकृत को हुई क्षति जैसे कि फाइब्रोसिस या सिरोसिस की जानकारी भी मिलती है।

लौह की अधिकता को ठीक-ठीक नापने की एक नई बाह्य विधि भी विकसित कर ली गई है जैसे कि सुपर कंडक्टिंग क्वांटम इंटरफेस डिवाइस। SQUID विधि शरीर में लौह की सांद्रता नापने के लिए लौह के अनुचुंबकीय गुणों पर निर्भर करती है। इसमें चुंबकीय क्षेत्र का उपयोग होता है जो रसोई घर में रखे फ्रिज पर रखे चुंबक जितना शक्तिशाली होता है। प्रक्रिया आरंभ करने से पहले कुछ मिनटों

में बिस्तर पर आरामपूर्वक लेटे हुए रोगी के यकृत की स्थिति अलट्रासाउंड की सहायता से ज्ञात कर ली जाती है। फिर रोगी के बिस्तर को **SQUID** के नीचे ले जाया जाता है और रोगी के शरीर को ठीक स्थिति से **SQUID** के नीचे स्थिर कर दिया जाता है। मशीन का एक मात्र भाग जो शरीर के सम्पर्क में रहता है वह है गुनगुने पानी भरा एक गुब्बारा, जिसे धीरे से पेट के ऊपरी भाग पर रखा जाता है।

जब मशीन नाप ले रही होती है तो रोगी को हर बार कुछ सेकेंड के लिए सांस रोकनी पड़ती है। 6 वर्ष से कम आयु के रोगियों को शिथिल रखने के लिए सुलाने वाली दवा (सेडेटिव) देने की आवश्यकता पड़ती है। जिन रोगियों का भार 10 कि.ग्रा. से कम है या उनका शरीर स्थूल है तो उन्हें इस विधि के उपयुक्त नहीं माना जाता। दुर्भाग्यवश यह विधि बहुत खर्चीली है, तकनीकी दृष्टि से कठिन है और वर्तमान में यूरोप और अमरीका के केवल पाँच केंद्रों में उपलब्ध है। हालांकि यदि चिकित्सक को इसकी आवश्यकता अनुभव हो तो अन्य देशों से रोगियों को मूल्यांकन के लिए विदेश में स्थित **SQUID** केंद्रों पर जाने की व्यवस्था की जा सकती है। यकृत में लौह की अधिकता को नापने की एक अन्य विधि मैग्नेटिक रेजोनेंस इमेजिंग (**IMRI**) अभी परीक्षण की स्थिति में है, यह विधि भी लौह के अनुचुंबकीय गुणों पर आधारित है। इस विधि से प्राप्त यकृत में लौह की सांद्रता के नाप (**MRI, T₂**) लिवर बायोप्सी के रासायनिक विश्लेषण से प्राप्त परिणामों के साथ तर्क संगत परस्पर संबंध दर्शाते हैं। इस विधि का एक लाभ एक यह भी हो सकता है कि **MRI** व्यापक रूप से उपलब्ध है तथा यह हृदय में लौह के अतिभार को नापने में एक उपयोगी साधन सिद्ध हुई है।

मूत्र में लौह की मात्रा

DFO द्वारा कीलेटन चिकित्सा की प्रभावोत्पादकता का मूल्यांकन करने के लिए लौह की अधिकता को नापने की अन्य लम्बे समय के प्रचलित विधि है 24 घंटे की अवधि में मूत्र में लौह की मात्रा को नापना। हालांकि इस परीक्षण का नैदानिक महत्व सीमित है क्योंकि **DFO** से प्रेरित मूत्र में निकलने वाली लौह की मात्रा में प्रतिदिन काफी विभिन्नता होती है।

DFO से जुड़ी जटिलताएँ तथा इनका निवारण त्वचा की सीमित प्रतिक्रियाएँ खुजली, लाली, सूजन, गांठें, जख्म, दर्द और सामान्य असुविधा सर्वाधिक सामान्य सीमित प्रतिक्रियाएँ हैं।

नीचे दी गई सलाह से इन प्रतिक्रियाओं को कम करने में सहायता मिल सकती है।

- (1) महत्वपूर्ण रक्त-वाहिकाओं और नसों को क्षति की संभावना को कम करने के लिए इनके आस-पास सुई चुभाने से बचें।
- (2) जाँच कर लें कि **DFO** पानी की ठीक मात्रा (500 मि.ग्रा. **DFO** के लिए 5 मि.ली. पानी) में घोला गया है। यदि आवश्यक हो तो थोड़ा पानी डालकर इसे और पतला कर लें।
- (3) इंजेक्शन लगाने की जगह बदलें। इसके लिए पेट सबसे ठीक जगह है। कुछ रोगी बांह के ऊपर के भाग या जांघ में इंजेक्शन लगवाना पसंद करते हैं। हालांकि सीमित प्रतिक्रियाएँ समय के साथ किसी भी स्थान पर हो सकती हैं इसलिए शरीर के भिन्न-भिन्न भागों का प्रयोग करना आवश्यक है। समय के साथ **DFO** के दीर्घकालीन प्रयोग से इंजेक्शन के स्थान पर गांठें पड़ सकती हैं, इंजेक्शन का स्थान बदलते रहने से इससे बचा जा सकता है या कुछ केशों में, सब में नहीं, पम्प शुरू करने से पहले इसकी प्लाटिक ट्यूब में एक केमिकल डाइल्यूरोनिजडेज की थोड़ी सी मात्रा डाल देने से भी इससे बचा जा सकता है।
- (4) **DFO** चिकित्सा शुरू करने से 30-60 मिनट पहले त्वचा पर एनेस्थेटिक क्रीम जैसे कि **Emla** लगाने से दर्द को कम किया जा सकता है। सूजन को करने लिए **DFO** दिए जाने के बाद गर्म पानी की पट्टी रखी जा सकती है। लाली, जख्मों, खुजली और सूजन के लिए कुछ चिकित्सक हीपेरिन क्रीम या फ्यूजिकोर की सलाह देते हैं।
- (5) निषेचन की गति पर भी ध्यान देना चाहिए क्योंकि **DFO** अधिक तेजी से दिए जाने पर सूजन आ सकती है।
- (6) चिकित्सक रोगी को **DFO** निषेचन से पहले कोई एंटी हिस्टामिन देने का निर्णय ले सकते हैं या कुछ गंभीर केशों में **DFO** के घोल में 5-10 मि.ग्रा. हाइड्रोकोर्टिजोन मिलाया जा सकता है।
- (7) बाजार में कई प्रकार के इन्फ्यूजर पम्प उपलब्ध हैं तथा रोगियों को अपनी आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग पम्प उपयुक्त लग सकते हैं। बैलून पम्प सबसे नए पम्पों में से हैं। ये पुराने पम्पों से आकार में छोटे, हल्के और कम आवाज करने वाले हैं। इनसे समय की बचत भी होती है तथा ये रोगियों के लिए अधिक सुविधाजनक हो सकते हैं क्योंकि इनमें प्रयोग किया जाने वाला **DFO** रोगाणुहीन वातावरण में केमिस्ट द्वारा प्री-मिक्स किया जाता है। इन सुविधाओं के कारण ये पम्प रोगीद्वारा आयरन कीलेटन चिकित्सा के अनुपालन में भी सुधार ला सकते हैं। हालांकि कीमत अधिक होने के कारण इन पम्पों का अधिकता से प्रयोग नहीं हो पाता है।
- (8) रोगियों की अलग-अलग प्रकार की सुइयों को प्रयोग करके देखने की इच्छा भी हो सकती है, इसके लिए वे अपने डॉक्टर या नर्स और अन्य रोगियों से इनके फायदों और नुकसानों की चर्चा कर सकते हैं। बहुत से रोगियों को छोटी, हल्की 'बटरप्लाइड' सुइयाँ पसंद आ सकती हैं 5.25 गेज या इससे छोटी ये सुइयाँ लगभग 45° के कोण पर त्वचा में लगाई जाती हैं। अन्य रोगी छोटी 'धमटैक' सुइयाँ पसंद कर सकते हैं, ये सुइयाँ त्वचा में सीधी खड़ी लगाई जाती हैं और एक विशेष प्रकार के टेप से फिक्स की जाती हैं।

यदि ऊपर वर्णित सभी उपाय रोगी को **DFO** से संबंधित प्रतिक्रियाओं से राहत दिलाने में विफल रहते हैं तो अंतःशिरा **DFO** चिकित्सा या सिकी वैकल्पिक कीलेटर के विषय में विचार किया जा सकता है।

DFO से गंभीर एलर्जी

DFO से गंभीर एलर्जी सामान्य नहीं हैं। आमतौर पर अस्वस्थता का अनुभव, झुनझुनी, चक्कर आना, थकान या सूजन और साँस लेने में दिक्कत, कभी-कभी इसके साथ बुखार और माँसपेशियों से दर्द एलर्जी के लक्षण हैं। यदि इन लक्षणों में से कोई लक्षण उत्पन्न हो जाए तो DFO का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए।

जिन रोगियों ने DFO चिकित्सा अभी शुरू ही की है उनमें यह सामान्य प्रतिक्रियाएँ अचानक उत्पन्न हो सकती हैं। यद्यपि जो रोगी नियमित चिकित्सा ले रहे हैं उनमें यह लक्षण धीरे-धीरे प्रकट होते हैं। जो भी हो DFO के प्रति तीव्र एलर्जी का उपचार 'डिसेंसिटाइजेशन' अर्थात् असंवेदीकरण द्वारा किया जाता है जिसमें रोगी को DFO की थोड़ी मात्रा का इंजेक्शन हाइड्रोकोर्टिजोन के साथ दिया जाता है फिर धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढ़ाकर ज्यादा कर दी जाती है। यह उपचार ध्यानपूर्वक डॉक्टर की निगरानी में किया जाता है। इसे प्रायः बार-बार किया जाता है जब तक कि लक्षण समाप्त न हो जाएँ और अक्सर इसमें सफलता मिलती है। हालांकि यदि उपचार विफल हो जाता है तो रोगी को DFO का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए तथा किसी वैकल्पिक कीलेटर जैसे कि डेफेरिप्रोन (डेफेरिप्रोन के प्रयोग वाला भाग देखें) के प्रयोग के विषय में विचार करना चाहिए।

DFO की गलत मात्रा से संबंधित जटिलताएँ

ये जटिलताएँ प्रमुखतः बच्चों और रक्त में फेरिटिन के कम स्तर वाले रोगियों (अर्थात् जिनमें लौह-भार कम हो) में DFO की अधिक मात्रा से संबंधित हैं।

- * श्रवण संबंधी समस्याएँ (आटोटॉक्सिमिटी)—कर्ण-विषाक्तता—इसमें कानों में झनझनाहट हो सकती है और विशेष रूप से उच्च आवृत्ति की ध्वनियों के सुनाई देने में कमी आ सकती है।
- * आँखों की समस्याएँ—चक्षु-विषाक्तता (ऑक्स्युलर टॉक्सिसिटी) इसमें रात्रि अंधता, दृष्टि का धुंधलापन, मोतियाबिंद और आँखों की अन्य समस्याएँ हो सकती हैं।

जब DFO अधिक मात्रा में दी जाती है तो इसके अणु लौह के साथ संयुक्त हुए बिना रक्त के प्रवाह में संचरण करते रहते हैं जिसके कारण प्रायः श्रवण और दृष्टि संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। हालांकि जिन रोगियों को डायबिटीज मेलिस है या जिनका साइकोट्रोपिक औषधियों द्वारा उपचार चल रहा है सही मात्रा में DFO लेते हुए भी इन दशाओं में केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र तक DFO की पहुँच बढ़ जाती है। जिन रोगियों में श्रवण और दृष्टि संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं उन्हें प्रायः कुछ समय के लिए DFO का प्रयोग बन्द कर देने की सलाह दी जाती है, एक बार जब ये जटिलताएँ कम हो जाएँ या समाप्त हो जाएँ तो चिकित्सा को DFO की कम मात्रा पर नियंत्रित कर दिया जाता है। यदि जल्दी पता चल जाए तो इस प्रकार की जटिलताओं को संभालना और इन्हें पलटना संभव है। इसलिए DFO ले रहे रोगियों की नियमित रूप से मॉनीटर करना आवश्यक है। जिसमें पूरी डॉक्टरी जाँच और श्रवण तथा दृष्टि संबंधी परीक्षण सम्मिलित हैं।

मंद परीक्षण और अस्थि-विकार

जिन रोगियों में फेरिटिन का स्तर कम होता है उनमें DFO की अधिक मात्रा से भी विकास की दर कम हो सकती है जोखिम के कारणों में चिकित्सा आरंभ करने की आयु कम (43 वर्ष) होना और DFO की मात्रा का निर्धारित मात्रा (735 कि.ग्रा./कि.ग्रा. बहुत छोटे बच्चे में) से अधिक होना शामिल है।

DFO की मात्रा कम करने से विकास की दर शीघ्र फिर उतनी ही हो जाती है जितनी कि DFO चिकित्सा आरंभ करने से पहले थी। विकास पर DFO के प्रभाव में धड़ और हाथों का असंगत रूप से छोटा होना शामिल है और इसके साथ ही हड्डियों और जोड़ों को भी क्षति पहुँचाती है इस दशा को मेटाफीजियल डिसप्लेसिया कहते हैं और इसका निदान एक्स-रे द्वारा किया जाता है। थैलासीमिया में अन्य कारणों जैसे कि लौह की अधिकता से भी विकास पर प्रभाव पड़ सकता है। यद्यपि यह पता लगाना अपेक्षया सरल है कि विकास में आया धीमापन कहीं DFO की अधिक मात्रा का परिणाम तो नहीं है क्योंकि इस स्थिति में रोगी को ग्रोथ हार्मोन देने से कोई लाभ नहीं होता। रोगियों को इस प्रकार के विकारों के लिए नियमित परीक्षण करवाते रहना चाहिए क्योंकि एक बार हो जाने के बाद इन्हें ठीक नहीं किया जा सकता है।

यरसीनिया एन्टेरोकोलिटिका से संक्रमण

यरसीनिया एन्टेरोकोलिटिका से होने वाले संक्रमणों का संबंध भी प्रायः DFO के प्रयोग से होता है। बैक्टीरिया, पैरासाइट तथा अन्य रोगाणुओं सहित सभी जीवाणुओं की वृद्धि के लिए लौह की आवश्यकता होती है इनमें से अधिकतर में कुछ विशेष संरचनाएँ होती हैं जिनकी सहायता से ये लौह ग्रहण करते हैं, किन्तु यरसीनिया उस बैक्टीरिया वर्ग का सदस्य है जिनमें लौह ग्रहण करने के अपने कोई साधन नहीं होते बल्कि इसके लिए ये फेरिऑक्सामिन अर्थात् DFO के साथ लौह के संयोजन से बनने वाले योगिक पर निर्भर करते हैं। DFO स्वाभाविक रूप से लौह का वाहक है इसको सिडेरोफोर भी कहा जाता है (ग्रीक भाषा में सिडेरो का अर्थ है लौह और फोर का

अर्थ है वहन करना) और इस प्रकार वस्तुतः यह लौह उपलब्ध करा के यरसीनिया की वृद्धि में सहायता करता है। लौह की अधिकता वाले रोगियों में यरसीनिया संक्रमण अत्यंत गंभीर हो सकते हैं तथा यह खतरा और भी अधिक बढ़ जाता है। यदि रोगी को **DFO** दिया जा रहा हो। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि यरसीनिया संक्रमणों का शीघ्रता से निदान कर के उपयुक्त एंटीबायोटिक के द्वारा उपचार किया जाए (संक्रमण के लक्षणों के विषय में अध्याय देखें)। संक्रमण के लक्षणों में पेट-दर्द, अतिसार, जोड़ों का दर्द, ज्वर या गला खराब होना सम्मिलित हैं। यदि इस प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो जाएं तो **DFO** उपचार तुरंत रोक देना चाहिए और जब तक कि लक्षण समाप्त न हो जाएँ और एंटीबायोटिक का एक कोर्स पूरा न हो जाए इसे पुनः आरंभ नहीं करना चाहिए। क्लेबसीला जैसे अन्य बैक्टीरिया या कवक (फंगस) से होने वाले (म्यूकोरमाइकोसिस) संक्रमणों को संभवतया **DFO** के प्रयोग से संबंधित बताया गया है परन्तु ये संक्रमण उतने सामान्य नहीं हैं जितने कि यरसीनिया किस्म के बैक्टीरिया से होने वाले संक्रमण होते हैं। रोगियों का सावधानी पूर्वक परीक्षण होना चाहिए और उन्हें लगातार यह ध्यान दिलाते रहना चाहिए कि बुखार होने पर यदि इसका कारण स्पष्ट न हो तो डॉक्टर की सलाह लें, हो सकता है कि स्पष्ट निदान होने तक **DFO** का प्रयोग रोक देने की आवश्यकता पड़े।

DFO से जुड़ी विशेष जटिलताएँ

DFO को शरीर में तेजी के साथ निषेचित नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे चेहरा एकदम लाल हो सकता है, रक्तचाप कम हो सकता है (हाइपोटेंशन), हृदय की गति तेज हो सकती है (टैकीकार्डिया) और यहां तक कि आघात भी हो सकता है। शिरा के माध्यम से **DFO** की बहुत अधिक मात्रा, 10 मि.ग्रा./कि.ग्रा./घंटे या इससे अधिक मात्रा से गुर्दों की क्षति और श्वसन की गंभीर समस्याएँ (एडल्ट रेस्पिरेटरी डिस्ट्रेम सिन्ड्रोम) होने का पता चला है।

गर्भावस्था

औपचारिक अध्ययनों से गर्भावस्था के दौरान **DFO** की निरापदता की अभी पुष्टि नहीं हो पाई है। तब तक उन गर्भवती महिला रोगियों को जिन्हें आयरन कीलेटन की आवश्यकता है सबसे अच्छी सलाह यही है कि वे गर्भावस्था के पहले तीन महीनों के दौरान **DFO** लेने से बचें। लौह की अत्यंत अधिकता या हृदय संबंधी गंभीर समस्याओं वाली गर्भवती महिला रोगियों का **DFO** की कम मात्रा 20-30 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन से गर्भ की बाद की अवस्थाओं में उपचार करने पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं देखे गए हैं। स्तन-पान कराते समय **DFO** उपचार फिर से आरंभ किया जा सकता है।

डेसफेरिऑक्सामिन उपचार का अनुपालन **DFO** के प्रयोग से जुड़ी असुविधा और कष्ट को देखते हुए यह अत्यंत आवश्यक है कि रोगी को हर प्रकार की सहायता उपलब्ध कराई जाए ताकि हव उपचार का पालन कर सके। डॉक्टर, नर्स तथा अन्य प्रोफेशनल जैसे कि मनोवैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ-साथ अभिभावकों को हर आयु के रोगियों में निरंतर आशा और उत्साह का संचार करते रहना चाहिए। किसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि इतनी कष्ट-साध्य चिकित्सा का दृढ़ता-पूर्वक अनुपालन करने के लिए प्रत्येक रोगी को जीने की और भरपूर जीवन जीने की कितनी अधिक इच्छाशक्ति की निरंतर आवश्यकता होती है। डेसफेरिऑक्सामिन चिकित्सा कठिन, समय लेने वाली, कष्टदायक और खर्चीली है और इसे जीवनपर्याप्त लेने की आवश्यकता होती है और यद्यपि यह एक जीवन-रक्षक चिकित्सा है पर **DFO** उपचार से रोगियों को लाभ का वैसा तत्काल अनुभव नहीं होता जैसा कि उदाहरण के लिए रक्ताधान के बाद होता है। बल्कि आयरन कीलेटन चिकित्सा के लाभ लौह की अधिकता की अनेकों और गंभीर जटिलताओं की रोकथाम और चिकित्सा के रूप में एक लम्बी अवधि से प्रकट होते हैं। **DFO** चिकित्सा के लाभ तत्काल दिखाई न देने के कारण विकसित देशों में भी जहाँ डेसफेरिऑक्सामिन आसानी से उपलब्ध है रोगियों को लौह की अधिकता से संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि उन्हें उपचार का पालन करना कठिन लगता है। जब रोगी किशोरवस्था और युववास्था में कदम रखता है तो ऐसी चिकित्सा के प्रति उसका विरोध प्रायः बढ़ता हुआ देखा गया है जो उसकी प्रतिदिन की शारीरिक, व्यवसायिक, सामाजिक और व्यक्तिगत गतिविधियों में बाधा डालती प्रतीत होती है। अतः विकासशील देशों में रोगी-उत्तरजीविता की दरें जबकि औषधियों और पम्पों के अभाव से संबंधित हैं वहीं विकसित देशों में समस्या चिकित्सा के अनुपालन का अभाव होने के कारण अधिक लगती है। किन्तु चुनौती चाहें रोगियों को उपचार के लिए आवश्यक दवाएँ और पम्प उपलब्ध कराने की हो या यह सुनिश्चित करने की कि रोगी चिकित्सा योजना का ही अनुपालन करें, रोगियों को राष्ट्रीय थैलासीमिया संगठनों, स्वास्थ्य कर्मचारियों, अभिभावकों और अन्य रोगियों द्वारा सहायता और प्रोत्साहन की सदैव आवश्यकता रहेगी। **TIF** भी सहायता का कोई कम महत्वपूर्ण स्रोत नहीं है, यह चिकित्सा और रोकथाम के कार्यक्रमों का समर्थन करने के लिए सरकारों को राजी करने में सहायता करता है।

लौह को निकालने वाली अन्य औषधियों डेफेरिप्रोन (1,2 डाइमिथाइल, 3 हाइड्रॉक्सीपिरिड, 4 वन **L1**) डेफेरिप्रोन या **L1**, जिसे 'पिल' भी कहा जाता है मुख द्वारा लिया जाने वाला एक कीलेटर है, इसे किसी भी अन्य पिल की तरह निगला जाता है। इसके विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं के विषय में वैज्ञानिकों में असहमति थी। इसकी परीक्षण संबंधी प्रक्रियाओं को अपूर्ण समझा गया और लम्बी अवधि में इसकी सुरक्षा तथा जानवरों पर इसके प्रभाव को देखने वाले अध्ययनों के अभाव से संबंधित चिन्ताओं के कारण डेफेरिप्रोन को लाइसेंस देना विवादास्पद सिद्ध हुआ है और इसे स्थगित कर दिया गया है।

वर्ष 1995 में पहली बार डेफेरिप्रोन को भारत में प्रयोग का लाइसेंस मिला यह लाइसेंस उन रोगियों द्वारा इसके प्रयोग के लिए था। जो विषाक्तता के कारण या निर्धारित मात्रा का अनुपालन न कर सकने के कारण DFO का प्रयोग नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार वर्ष 2000 में यूरोप में विशेष शर्तों या विशिष्ट परिस्थिति नीति के अनतर्गत अनुमति दी गई जिसके अनुसार और अधिक अध्ययनों की आवश्यकता होती है। इसको विकसित करने वाली फार्मास्यूटिकल कंपनी (एपोटेक्स) द्वारा अतिरिक्त अध्ययनों का अपना विशेष उत्तरदायित्व पूरा कर देने के बाद अप्रैल 2000 में डेफेरिप्रोन को यूरोप में मार्केटिंग के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गए। तथापि अमरीका के माइसेसिंग प्राधिकरण, फूड एण्ड ड्रग एडमिननिस्ट्रेशन (FDA) ने अभी इसके प्रयोग की अनुमति नहीं दी है। यूरोपियन यूरियन द्वारा दी गई अनुमति के अनुसार उन रोगियों के लिए जो डेसफेरिऑक्सामिन का प्रयोग करने में असमर्थ हैं या जिनमें DFO चिकित्सा अप्रभावी सिद्ध हुई है डेफेरिप्रोन को द्वितीय पंक्ति की औषधि के रूप में प्रयोग किया जा सकेगा।

इस बीच 1990 के दशक के मध्य से यूरोप और अमेरिका में प्रमुखतः इस दवा को विकसित करने वाली कंपनी के तत्वावधान में इस दवा की अधिकतम सुरक्षा और प्रभाविता का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से डेफेरिप्रोन का प्रयोग करते हुए कोई नियंत्रित रोग-विषयक परीक्षण किए जा रहे हैं। कुछ विकासशील देशों, प्रमुखतः भारत में डेफेरिप्रोन इसके औपचारिक पंजीकरण से बहुत पहले से ही प्रयोग में लाई जा रही है। कई बार रोग-विषयक परीक्षणों से बाहर भी इसका प्रयोग हुआ है, कुछ तो इस कारण से कि वैकल्पिक DFO बहुत महंगी है और इसलिए अधिकतर रोगियों की पहुँच से बाहर है और कुछ इस कारण से कि डेफेरिप्रोन स्थानीय उत्पादक कंपनियों के द्वारा भारत में अपेक्षाया कम कीमत पर बेची जाती है।

डेफेरिप्रोन (L1) कैसे कार्य करती है?

L1 के तीन अणु लौह के एक परमाणु (बाइडेंटेट) से संयुक्त होकर एक कॉम्प्लेक्स बनाते हैं। यह कॉम्प्लेक्स मूत्र के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है जबकि डेसफेरिऑक्सामिन में यह मल के द्वारा निकाला जाता है। डेफेरिप्रोन का आकार छोटा होने के कारण यह आमाशय के द्वारा शीघ्रता से अवशोषित कर लिया जाता है और लेने के 45-60 मिनट के बाद रक्त में उच्च सांद्रता बना लेता है। रक्त से निष्कासन की इसकी दर DFO की अपेक्षा काफी कम है अर्थात् अधिकतर रोगियों में यह रक्त में अधिक समय तक सक्रिय रहती है, इसे लेने के 5-6 घंटों के अन्दर 90 प्रतिशत मुक्त औषधि रक्त में से निकल जाती है।

डेफेरिप्रोन (L1) का प्रयोग

अधिकतर केशों में रोगियों को 75 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर के भार के अनुसार प्रतिदिन तीन खुराकों में L1 लेने का परामर्श दिया जाता है। डेफेरिप्रोन के विषय में काफी लम्बा अनुभव रखने वाले कई विशेषज्ञों की राय में डेफेरिप्रोन यदि इस प्रकार दिया जाए तो यह अतिरिक्त लौह को निकालने में DFO की अपेक्षा 65 प्रतिशत प्रभावी होता है तथा रोगियों के बीच इसमें बहुत अधिक अंतर पाया जाता है।

वे रोगी जिनका फेरिटिन स्तर बहुत अधिक है और जो पहले DFO ठीक प्रकार से नहीं ले रहे थे, जब उन्हें इस प्रकार से L1 दिया जाता है तो उनके द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करने की संभावना उनसे अधिक होती है जिनका फेरिटिन स्तर 2500 मा.ग्रा./ली. से कम होता है।

डेफेरिप्रोन (L1) का DFO के साथ प्रयोग

हाल ही में हुए एक रोग-विषयक अध्ययन से यह पता चला है कि DFO के साथ L1 के प्रयोग से शरीर से बाहर निकाले गए लौह की मात्रा बढ़ जाती है इसका कारण संभवतः यह है कि प्रत्येक औषधि शरीर के अलग-अलग भागों से लौह को बाहर निकालती है। इस अध्ययन में एक जैसे फेरिटिन स्तर वाले रोगियों के दो ग्रुपों को सम्मिलित किया गया, एक ग्रुप को DFO दी गई जबकि दूसरे ग्रुप को L1, फिर दोनों ग्रुपों के हृदय के MRI संकेतों की तुलना की गई। परिणामों से पता चला कि L1 हृदय में संचित लौह को DFO की तुलना में अधिक दक्षतापूर्वक निकाल सकता है जबकि डेसफेरिऑक्सामिन यकृत से अधिक लौह निकालने में ज्यादा कारगर हो सकती है। उपर्युक्त परिणामों ने आयरन कीलेटन की प्रभावित में वृद्धि करने तथा हृदय से लौह के त्वरित और प्रभावी निष्कासन में सफलता प्राप्त करने की आशा में कुछ अनुसंधानकर्ताओं को DFO और डेफेरिप्रोन साथ-साथ प्रयोग करने के लिए रोगियों पर किए गए औपचारिक तुलनात्मक अध्ययनों में भोजन और रक्ताधान के माध्यम से शरीर द्वारा ग्रहण किए गए लौह की मात्रा और मल तथा मूत्र के द्वारा बाहर निकाले गए लौह की मात्रा का आकलन करने पर यह पता चला कि जो रोगी दोनों दवाएँ साथ-साथ ले रहे थे उनमें निकाले गए लौह की मात्रा में वृद्धि हुई थी (2)।

DFO के साथ मिलकर L1 किस प्रकार कार्य करता है इसकी प्रारंभिक व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—इसके अणुओं का आकार अपेक्षाकृत छोटा होने के कारण डेफेरिप्रोन अधिक शीघ्रता और अधिक सरलता से कोशिकाओं में प्रवेश कर जाता है और उन भागों तक पहुँच जाता है जहाँ आकार में कहीं बड़े और मंद अणुओं के कारण DFO नहीं पहुँच सकता। इसलिए डेफेरिप्रोन कोशिकाओं के अन्दर से लौह को संयुक्त (कीलेटन) करके अधिक स्थायी कीलेटर DFO (सिंक) को उपलब्ध करा देती है, जो इसे मल और

मूत्र के द्वारा शरीर से बाहर निकाल देती है। इस प्रकार को 'शटल इफेक्ट' कहा जाता है। हालांकि डेफेरिप्रोन और DFO के कार्य करने के अलग-अलग तरीकों और जहाँ से ये लौह के विषय में अभी पूरी तरह से ज्ञात नहीं हो सकता है।

हाल के वर्षों में यूरोप और विकासशील देशों के चिकित्सा केन्द्रों में L1 और DFO के प्रयोग की कई अलग-अलग विधियों प्रयोग में लाई जा रही हैं तथा कुछ रोग-विषयक अध्ययनों के परिणाम प्रकाशित हो चुके हैं। इनसे दोनों दवाओं के साथ-साथ प्रयोग से आयरन कीलेटन की प्रभाविता में महत्वपूर्ण के संकेत मिलते हैं और कम से कम एक वर्ष या अधिक समय तक दिए जाने पर कोई अपत्याशित गौण-प्रभाव भी नहीं पाया गया। इन परिणामों ने संयोजन चिकित्सा पर अधिक लम्बी अवधि के और अध्ययनों को प्रोत्साहित किया है जिनका उद्देश्य इन दवाओं के अलग-अलग प्रयोग की तुलना में इन्हें संयुक्त रूप से प्रयोग करने पर किसी भी एक दवा से होने वाली किसी नई विषाक्तता या विषाक्तता में होने वाली वृद्धि का मूल्यांकन करना है तथा यह भी कि इन दवाओं का सबसे अच्छा प्रयोग संयुक्त रूप से किस प्रकार किया जा सकता है-एक साथ, क्रमिक या विकल्पतः।

L1 के प्रतिकूल प्रभाव

L1 का सर्वाधिक गंभीर अवांछित प्रभाव है श्वेत रक्त कोशिकाओं विशेष रूप से न्यूट्रोफिल कोशिकाओं की संख्या में कमी। ये कोशिकाएँ संक्रमण से शरीर की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। न्यूट्रोफिल कोशिकाओं की संख्या में सीमित कमी (500-1500/घ. मि.मी.) को न्यूट्रोपीनिया कहते हैं।

जबकि इनकी संख्या में तीव्र कमी (2500/घ.मि.मी.) को एग्नेन्युलोसाइटोसिस कहा जाता है।

L1 के प्रयोग पर हुए कई अध्ययनों के अनुसार न्यूट्रोपीनिया अधिक सामान्य है जबकि एग्नेन्युलोसाइटोसिस काफी थोड़े केंसों में पाया जाता है। तथापि यदि रोगी डेफेरिप्रोन लेना बन्द कर दे तो इन दोनों को ही पलटा जा सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि L1 का प्रयोग कर रहे रोगी का प्रति 2-3 सप्ताह में कम से कम एक बार श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या और विभिन्न प्रकार की श्वेत कोशिकाओं (DLC) की संख्या और प्रतिशतता के लिए परीक्षण किया जाना चाहिए।

रोगियों में यदि संक्रमण के लक्षण दिखाई दें तो उनका परीक्षण अधिक जल्दी-जल्दी किया जाना चाहिए। ज्वर होने या गला खराब होने का प्रथम लक्षण प्रकट होते ही या किसी अन्य संक्रमण का संकेत मिले ही रोगी को डेफेरिप्रोन का प्रयोग तत्काल रोक देना चाहिए, रक्त का पूरा परीक्षण करवाना चाहिए और निर्धारित एंटीबायोटिक का कोर्स पूरा कर लेना चाहिए। अधिकतर केंसों में श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या पुनः सामान्य हो जाती है तथा डेफेरिप्रोन उपचार पुनः आरम्भ किया जा सकता है। हालांकि जब तक श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या 3000/घ.मि.मी. या अधिक न्यूट्रोफिल कोशिकाओं की संख्या 1000/घ.मि.मी. या अधिक और प्लेटलेट कोशिकाओं की संख्या 100,000/घ.मि.मी. या अधिक न हो जाए, उपचार पुनः आरंभ करने की सलाह नहीं दी जाती। दवा के प्रतिकूल प्रभावों के विषय में जानते हुए, हेपेटाइटिस बी और सी से संक्रमित थैलासीमिया मेजर के रोगियों को जिनकी इन्टरफेरॉन चिकित्सा होनी है, L1 के प्रयोग का परामर्श देने से पहले सावधानीपूर्वक विचार कर लेना चाहिए।

डेफेरिप्रोन के अन्य गौण प्रभाव

(1) L1 का प्रयोग कर रहे कई रोगियों को जोड़ों में दर्द और सूजन का अनुभव होता है। यह प्रायः घुटनों, टखनों, कोहनियों, कूल्हों तथा कमर के नीचे के हिस्से में होता है। इसके अतिरिक्त जकड़न और चलने-फिरने में कठिनाई का अनुभव भी होता है। जिन रोगियों का सौरम फेरिटिन अधिक हो अथवा जो L1 अधिक मात्रा (75 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन से अधिक) में ले रहे हों उनमें जोड़ों की सूजन होने के विवरण मिले हैं। यद्यपि इस गौण प्रभाव के उत्पन्न होने का कारण स्पष्ट रूप से समझा नहीं गया है पर यह माना जाता है कि यह उस शोथ का परिणाम हो सकता है जो L1 द्वारा अन्य संचय स्थानों से लौहे को जोड़ों में स्थानांतरित करने के कारण उत्पन्न हो सकता है। L1 की मात्रा में कमी करने या इसे बिल्कुल बंद कर देने से इस प्रभाव को पलटा जा सकता है। जोड़ों के दर्द का उपचार दर्द निवारकों (एनालजेसिकस) से किया जा सकता है। जब तक दर्द निवारक और L1 की मात्रा में कमी लक्षणों में सुधार लाने में विफल न हो जाए, रोगी को इस दवा का प्रयोग पूरी तरह बन्द कर देने की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी यदि जोड़ों के दर्द के साथ सूजन भी हो तो सामान्यः रोगियों को इस दवा का प्रयोग बन्द कर देने की सलाह दी जाती है।

बाद में L1 का प्रयोग पुनः आरंभ किया जा सकता है हालांकि इसकी मात्रा को कम रखा जाता है और सूक्ष्मता पूर्वक मानीटरिंग की जाती है क्योंकि रोगी के जोड़ों में दर्द और सूजन फिर से हो जाने की काफी संभावना रहती है।

(2) L1 का प्रयोग कर रहे कुछ रोगियों में मतली, चक्कर, उल्टी, दस्त और पेट दर्द जैसे पेट की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लक्षण सामान्यतः हल्के होते हैं और इनमें किसी उपचार की आवश्यकता नहीं पड़ती। दवाओं (एसिडिटी और उल्टी की दवाएँ) से आमतौर पर लक्षणों में कमी आ जाती है। इसके अतिरिक्त L1 को यदि भोजन के साथ लिया जाए तो इससे मतली कम होने में सहायता मिलती है।

(3) डेफेरिप्रोन का प्रयोग कर रहे रोगियों में जस्ते (जिंक) की कमी हो सकती है क्योंकि यह दवा लौह के अतिरिक्त अन्य धातुओं के साथ भी संयुक्त हो जाती है, जिनमें जिंक भी सम्मिलित है। त्वचा की वृद्धि और विकास सहित कई कार्यों के लिए शरीर को जिंक

- की आवश्यकता होती है। डायबिटिज की उच्च संभावना वाले कुछ रोगियों में जिंक के स्तर में कमी पाई गई है। L1 ले रहे रोगियों को जिंक सप्लीमेंट देने से समस्या का निवारण हो सकता है। यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक होगा कि शरीर को अपने सामान्य कार्यों के लिए जिन अन्य धातुओं की आवश्यकता होती वे अनजाने में L1 चिकित्सा के द्वारा निकाल न दी जाएं, थैलासीमिया मेजर में आयरन कीलेटन चिकित्सा का लक्ष्य अन्य उपयोगी धातुओं को शरीर में रखते हुए केवल हानिकारक अतिरिक्त लौह को बाहर निकालना है।
- (4) एक बहुकेन्द्रीय अध्ययन से प्राप्त विवरण के अनुसार यकृत की विषाक्तता लिवर फंक्शन टेस्ट (ALT) के बंद हुए स्तर सामान्यतः हीपेटाइटिस से प्रभावित रोगियों में पाए गए और ये अल्पकालिक थे। घटते-बढ़ते लिवर फंक्शन के परिणामों के कारण बहुत थोड़े से रोगियों को L1 का प्रयोग बन्द करने की आवश्यकता पड़ी।

एक लेख के अनुसार L1 का प्रयोग कर रहे रोगियों में L1 का प्रयोग रोक देना पड़ा (7)।

डेफेरिप्रोन की कार्य कुशलता

डेफेरिप्रोन कितनी अच्छी तरह कार्य कर रही है यह जाँचने के लिए और इस औषधि से संबंधित किसी भी अवांछित प्रभाव को होने से रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए—

- (1) प्रत्येक 3 महीनों में एक बार रक्त में फेरिटिन का स्तर नापना चाहिए।
- (2) प्रति सप्ताह या प्रति 2-3 सप्ताह में एक बार फुल ब्लॉड काउंट कराना चाहिए।
- (3) प्रति 3 महीने में एक बार 24 घंटे के मूत्र की जाँच करानी चाहिए। यह विशेष रूप से L1 के संदर्भ में अधिक उपयोगी है क्योंकि डेसफेरिऑक्सामिन से भिन्न L1 के द्वारा निकाला गया लगभग सारा लौह मूत्र के माध्यम से निकलता है।
- (4) बायोकेमिकल विश्लेषण और लिवर फंक्शन टेस्ट हर महीने होने चाहिए और
- (5) 3-6 महीने में जिंक का स्तर नापा जाना चाहिए।

मॉनीटरिंग के लिए कौन कौन से परीक्षण कितनी अवधि के बाद कराने हैं इसका निर्णय उपचार कर रहे चिकित्सक द्वारा लिया जाता है क्योंकि वह रोगी की दशा के सबसे अच्छी तरह जानता है।

जहां संभव हो वहां लिवर बायोप्सी के द्वारा (क) SQUID के प्रयोग से, (ख) और MRI के द्वारा (ग) यकृत में लौह की मात्रा (a + b) और हृदय उतकों में लौह की मात्रा (c) के विषय में ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त हो सकती है।

विगत 15 वर्षों में डेफेरिप्रोन की निरापदता और प्रभाविता के विषय में पर्याप्त आंकड़े एकत्र हो गए हैं और थैलासीमिया की चिकित्सा से जुड़े वैज्ञानिकों ने इस दवा के प्रयोग से संबंधित उपलब्ध सूचनाओं का संचयन और विश्लेषण करना आरंभ कर दिया है।

इन आँकड़ों के निरीक्षण से पता चला है कि डेफेरिप्रोन द्वारा उपचार से कुछ रोगियों के रक्त में फेरिटिन के स्तर और लौह के संचय में कमी आती है। ध्यानपूर्वक मानीटर करते हुए यह दवा 4 वर्ष या अधिक समय तक सुरक्षित रूप से दी जा सकती है। आँकड़े यह भी दर्शाते हैं कि—

- डेफेरिप्रोन की मात्रा को सामान्यतः दी जाने वाली मात्रा प्रतिदिन 75 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर के भार से बढ़ाकर और
- डेफेरिप्रोन चिकित्सा की डेसफेरिऑक्सामिन के साथ मिला कर देने से मूत्र में निकलने वाले लौह की मात्रा बढ़ सकती है और रक्त में फेरिटिन के स्तर में और भी कमी आ सकती है।

तथापि थैलासीमिया की चिकित्सा से जुड़े सभी वैज्ञानिक इस बात से हमत हैं कि इस औषधि की विषाक्तता का और बेहतर अन्वेषण करने के लिए लम्बी अवधि के विधिवत् अध्ययनों की आवश्यकता है, जिनमें इस औषधि की अधिक मात्रा में लेने पर DFO के साथ संयुक्त रूप से लेने पर इन दोनों की स्थितियों में इसकी विषाक्तता की जाँच की जाए। धीरे-धीरे इस विषय में स्थिति और स्पष्ट हो जाएगी कि इस औषधि को कैसे और कब प्रयोग किया जा सकता है और इसके साथ ही किस प्रकार के रोगियों को इसके प्रयोग से लाभ मिलने की संभावना है। तब तक चिकित्सकों को और रोगियों को दोनों को ही DFO उपचार के अनुपालन में सुधार के लिए पूरा प्रयास करना चाहिए और स्पष्ट चिकित्सा निर्देश होने पर L1 का प्रयोग होना चाहिए।

दुर्भाग्यवश अधिकार विकासशील देशों में DFO और डेफेरिप्रोन दोनों के मूल्य इनके समुचित प्रयोग में बाधा बने हुए हैं। लौह को निकालने के लिए नई औषधियाँ वर्तमान में कई अन्य ऑयरन कीलेटन दवाओं पर परीक्षण हो रहे हैं, इनमें वहन करने योग्य मूल्य सीमा में प्रयोक्ता अनुकूल भुख से लिए जाने वाले कीलेटनों पर विशेष रूप से जोर दिया जा रहा है। हालांकि अभी तक डेसफेरिऑक्सामिन बनाने वाले कंपनी नोवार्टिस फर्मा द्वारा उत्पादित 1CL670 ही एक मात्र ऐसी दवा है जिसे मानव अध्ययनों में प्रयोग किए जाने की अनुमति दी गई है।

मनुष्यों में 1CL670 की निरापदता, प्रभावकारिता और इसकी उपयुक्त मात्रा निश्चित की जा चुकी है और रोग-विषयक अध्ययन अब अन्तिम चरण (3 चरण) में हैं। अब तक (2002) के परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहे हैं; प्रतिदिन 20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. की मात्रा से यकृत में लौह की मात्रा आई कमी प्रतिदिन 40 कि.ग्रा./कि.ग्रा. डेसफेरिऑक्सामिन के प्रयोग से होने वाली कमी के समान रही। पहले इस

दवा को अनुमोदन के लिए यूरोप और अमरीका के प्राधिकरणों के समक्ष प्रस्तुत करना होगा ताकि इसे पंजीकृत कराया जा सके और रोगियों में वितरित किया जा सके, आशा है यह कार्य 2005 तक पूरा हो जाएगा (8)। आशा की जाती है कि यह तथा मुख से लिए जाने वाले अन्य कीलेटर चिकित्सीय प्रयोग के लिए शीघ्र उपलब्ध हो जाएंगे जिससे थैलासीमिया के रोगियों के लिए उपलब्ध चिकित्सा विकल्पों की स्थिति में सुधार आएगा।

अध्याय - 5

थैलासीमिया से जुड़ी चिकित्सा संबंधी समस्याएँ और इसका उपचार

पिछले दो दशकों में थैलासीमिया मेजर के उपचार में आश्चर्यजनक सुधार हुआ है-इससे रोगियों की, विशेष रूप से पश्चिमी देशों के रोगियों की उत्तरजीविता की दर में स्पष्ट वृद्धि और जीवन की गुणवत्ता में सार्थक सुधार हुआ है। फिर भी थैलासीमिया मेजर के रोगियों को स्वास्थ्य संबंधी कई समस्याएँ हो सकती हैं जिनमें से कुछ तो स्वयं रोग के कारण हैं जबकि अन्य समस्याएँ अनुपयुक्त या घटिया उपचार का परिणाम हैं। जिसमें अनुपयुक्त रक्ताधान चिकित्सा, रक्त की निरापदता का अभाव और डीआरओ का आवश्यकता से कम प्रयोग सम्मिलित हैं।

तिल्ली की अतिक्रियता

(प्लीहा) थैलासीमिया मेजर के कई रोगियों में तिल्ली से संबंधित समस्याएँ हो सकती हैं। तिल्ली शरीर में बाँई तरफ पसलियों के पीछे डायक्राम के ठीक नीचे स्थित होती है। यह लगभग मुट्ठी के आकार का बैंगनी रंग का नरम सा अवयव है। एक सामान्य तिल्ली में 20-30 मि.ली. लाल रक्त कोशिकाएँ होती हैं। हालांकि अनुपयुक्त रक्ताधान के परिणामस्वरूप निरंतर मंद से तीव्र रक्ताल्पता वाले रोगियों में तिल्ली में 1 लिटर (1000 मि.ली.) से भी अधिक रक्त हो सकता है। क्योंकि रक्ताल्पता पर काबू पाने में शरीर की सहायता करने के प्रयास में तिल्ली अतिरिक्त लाल रक्त कोशिकाएँ बनाती हैं, यह कोशिकाएँ एक्स्ट्रा मेड्युलरी एरिथ्रोपोएसिस नामक प्रक्रिया से बनती हैं अर्थात् लाल रक्त कोशिकाएँ अपने बनने के सामान्य स्थान, अस्थिमज्जा कके बाहर बनती हैं।

तिल्ली के कई महत्वपूर्ण कार्य हैं जिनमें संक्रामक माइक्रोब, बैक्टीरिया और पैरासाइटको फिल्ट्रेशन द्वारा रक्त से निकाल कर संक्रमण से शरीर की रक्षा करना शामिल है। तिल्ली लाल रक्त कोशिकाओं को उनका जीवन चक्र पूरा हो जाने पर संचरण से निकाल लेती है। फिर उनको नष्ट करके हीमोग्लोबिन में से लौह और ग्लोबिन को मुक्त कर देती है ताकि नई कोशिकाओं के निर्माण में उनका पुनः प्रयोग हो सके। हालांकि थैलासीमिया मेजर के रोगियों में पुनःचक्रण (रिसाईक्लिंग) की यह प्रक्रिया ठीक से कार्य नहीं करती बल्कि लौह तिल्ली में जमा हो जाता है या रक्त प्रवाह हो जाता है या रक्त प्रवाह में चला जाता है और फिर से तिल्ली में जमा हो जाता है। इसके अतिरिक्त थैलासीमिया मेजर के रोगियों में जो लाल रक्त कोशिकाएँ बनती हैं वे असामान्य आकृति की होती हैं और इसलिए तिल्ली में अटक जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप तिल्ली का आकार निरंतर बढ़ता जाता है और इनके साथ-साथ प्रायः पेट का आकार भी बढ़ जाता है। तिल्ली पर अतिरिक्त कार्य का बोझ आ पड़ता है, और इसे पूरा करने के प्रयास में तिल्ली अति सक्रिय हो जाती है-इसे हाइपरस्प्लीनिज्मा कहते हैं। अति सक्रिय तिल्ली उन लाल रक्त कोशिकाओं को भी नष्ट कर देती है जो रोगी को रक्ताधान से प्राप्त होती हैं। इसके परिणामस्वरूप रोगी को प्रत्येक रक्ताधान में अधिक रक्त की आवश्यकता पड़ती है पर रक्ताधान रक्ताल्पता पर कोई प्रभाव डालने में विफल रहते हैं। एक अति सक्रिय तिल्ली रक्त के अन्य अवयवों जैसे कि श्वेत रक्त कोशिकाएँ और थ्रोम्बोसाइट को भी नष्ट कर सकती हैं।

तिल्ली की अतिसक्रियता को सुधारा नहीं जा सकता। इसलिए यदि एक बार इस बात की पुष्टि हो जाए कि तिल्ली शरीर के लिए हानिकारक ढंग से कार्य कर रही है तो इसे स्प्लीनेक्टमी नामक शल्य क्रिया के द्वारा शरीर से निकाल देना आवश्यक होता है। स्प्लीनेक्टमी से थैलासीमिया का उपचार नहीं होता बल्कि इससे केवल बढ़ी हुई तिल्ली के कारण होने वाली विशिष्ट समस्याओं का समाधान हो जाता है।

तिल्ली को निकाल देने का निर्णय चिकित्सा संबंधी कई बातों पर ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद लेना चाहिए जिनमें निम्नलिखित अत्यन्त महत्वपूर्ण मानदण्ड सम्मिलित हैं :-

1. एक बड़े आकार की तिल्ली प्रायः 6 से.मी. से अधिक लम्बाई और जिसके कारण कष्ट का अनुभव ।
2. कोई अन्य स्वास्थ्य समस्या न होते हुए भी रोगी को रक्ताधान के लिए आवश्यक रक्त की मात्रा का बढ़ते जाना अर्थात् जब आवश्यक रक्त की मात्रा बढ़कर डेढ़ गुणी हो जाए या जब औसत हीमोग्लोबिन स्तर बनाए रखने के लिए 200-220 मि.ली./कि.ग्रा./वर्ष से अधिक निश्चित लाल रक्त कोशिकाओं की आवश्यकता पड़े।
3. रोगी की आयु - रोगी 5 वर्ष से अधिक आयु का होना चाहिए। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, शरीर को संक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करने में तिल्ली की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए तिल्ली को निकाल देने से संक्रमणों की संभावना बढ़ जाती है। 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में इसकी संभावना विशेष रूप से अधिक होती है क्योंकि उनकी प्रतिरक्षा-प्रणाली अभी पूर्ण रूप से तैयार नहीं होती। स्प्लीनेक्टमी को आजकल अपेक्षाकृत एक सरल शल्य क्रिया समझा जाता है इसमें अब पहले जैसे ज्यादा जोखिम नहीं हैं। तिल्ली की प्रतिरक्षात्मक कार्य क्षमता को बनाए रखने के प्रयास में आंशिक स्प्लीनेक्टमी या एंबोलाइजेशन की तकनीक भी विकसित कर ली गई है।

प्लीहोच्छेदन (स्प्लीनेक्टमी) और संक्रमण स्प्लीनेक्टमी के बाद प्रमुख चिन्ता गम्भीर संक्रमणों की संभावना भी होती है। जिस व्यक्ति की

स्प्लीनेक्टमी हो जाती है उस व्यक्ति को एक सामान्य व्यक्ति अपेक्षा बैक्टीरिया से अधिक खतरा होता है जो गंभीर से घातक संक्रमण तक उत्पन्न कर सकते हैं। इन जीवाणुओं में स्ट्रेप्टोकोकल और मेनिनजिटाइटिस संक्रमण उत्पन्न करने वाले जीवाणु सम्मिलित होते हैं। 5 वर्ष से कम आयु के रोगियों में संक्रमणों का खतरा बहुत अधिक होता है और 2 वर्ष से कम आयु के रोगियों में तो यह खतरा अत्यंत अधिक होता है। स्प्लीनेक्टमी होने के बाद रोगी को जीवन भर संक्रमणों का अधिक खतरा बना रहता है, यह खतरा स्प्लीनेक्टमी के 1-4 वर्ष बाद तक विशेष रूप से अधिक होता है।

जो रोगी स्प्लीनेक्टमी करवाते हैं उनमें संक्रमण के खतरे को रोकने या कम करने के उद्देश्य से तीन तकनीकों का उपयोग होता है

(1) प्रतिरक्षी रोगनिरोध (Immuno Prophylaxis)

न्यूमोकोकल, हीमोफिलस इन्फ्लुएन्जा और मेनिंगोकोकल बेक्सीन द्वारा प्रतिरक्षीकरण टीकाकरण सामान्यतः सर्जरी से दो सप्ताह पहले शुरू होता है और निश्चित दिशा निर्देशों के अनुसार सर्जरी के बाद फिर से किया जाता है।

(2) रसायन रोगनिरोध (Ehemoprophylosis)

एंटीबायोटिक्स : सामान्यतः मुख द्वारा ली जाने वाली पेन्सिलिन - 2 वर्ष से कम आयु के बच्चों को 125 मि.ग्रा. दिन में दो बार, 2 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को 250 मि.ग्रा. दिन में दो बार। यदि रोगी पेन्सिलिन नहीं ले सकता है बैक्लिपिक एंटीबायोटिक दी जा सकती है। फिर भी प्रयोग की अवधि प्रत्येक केस के अनुसार काफी भिन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए : स्प्लीनेक्टमी करवा चुके रोगियों के कुछ चिकित्सक जीवन भर एंटीबायोटिक लेने की सलाह देते हैं तो अन्य केवल 18 वर्ष की आयु तक जबकि कुछ अन्य स्प्लीनेक्टमी बाद मात्र दो वर्षों तक। बहराहल खतरों के न्यूनतम रखने के लिए रोगी को नियमित मूल्यांकन की आवश्यकता होती है।

(3) शिक्षा - रोगियों और माता-पिता/अभिभावकों को संक्रमण के खतरों के विषय में शिक्षित करना और संभावित संक्रमण जैसे कि ज्वर, रुग्णता, या शरीर में दर्द के विषय में सतर्क रहने के लिए प्रोत्साहित करना अत्यंत आवश्यक है। रोगियों और अभिभावकों को जो यात्रा करने की योजना बना रहे हो उनको अन्य देशों में पाए जाने वाले संक्रामक रोगों के विषय में भी जानकारी होनी चाहिए।

(4) प्लेटलेट्स की बढ़ी हुई संख्या पर ध्यान देना

स्प्लीनेक्टमी के बाद प्लेटलेट्स की संख्या में वृद्धि हो सकती है अर्थात् इनकी संख्या 800,000 मि.मी. से अधिक हो सकती है। इस स्थिति को 50-100 मि.ग्रा. एस्पिरिन प्रतिदिन देकर संभाला जा सकता है। जब कि प्लेटलेट्स की संख्या पुनः सामान्य न हो जाए।

कुल मिलाकर तिल्ली की समस्याओं से पूरी तरह बचने का सबसे अच्छा तरीका है थैलासीमिया मेजर के निदान की पुष्टि हो जाने पर सुरक्षित और ठीक प्रकार से संसाधित रक्त चढ़वाना और हीमोग्लोबिन का स्तर 9-10 ग्रा./डे.लि. से अधिक बनाए रखना। इस प्रकार तिल्ली के आकार में वृद्धि को धीमा किया जा सकता है और रोका जा सकता है और स्प्लीनेक्टमी से बचा सकता है।

इसके अतिरिक्त तिल्ली का आकार लगभग सामान्य जैसा बनाए रखा जाए तो इससे रक्ताधान से पूरा लाभ मिलने में सहायता मिलती है।

हृदय और अंतःस्रावी जटिलताएँ

थैलासीमिया मेजर के रोगियों को प्रायः हृदय, यकृत और अंतःस्रावी ग्रंथियों की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये सब समस्याएँ आमतौर पर लौह की अधिकता से संबंधित होती हैं। जिन रोगियों में रक्ताधान या तो अपर्याप्त होता है या बिल्कुल ही नहीं होता उनमें हृदय संबंधी समस्याएँ तो प्रायः हो सकती हैं पर यकृत और अंतः स्रावी समस्याएँ बिरले ही होती हैं, कुछ तो इसलिए कि यह समस्याएँ अत्यधिक रक्ताधान लेने वाले उन रोगियों में होती हैं जिनका आयरन कीलेटन ठीक प्रकार से नहीं होता और कुछ इसलिए कि अपर्याप्त रक्ताधान वाले रोगी इतने समय तक जीवित ही नहीं रहते कि यह समस्याएँ उत्पन्न हों। (नचे देखें)

उमौह की अधिकता के परिणाम

हृदय	-	दोनों वेन्टिकल विफल लयहीनता
पीयूष ग्रंथि	-	हाइपोगोनेडोट्रोफिक-हाइयोगोनेडिज्म
अंतःस्रावी ग्रंथि	-	मधुमेह, हाइपोथायराइड, हाइयोपेराथायराइड
यकृत	-	फाइब्रोसिस
		सिरोसिस, विशेषतः यदि हेपेटाइटिस (सक्रिय)

हृदय संबंधी जटिलताएँ

जिन रोगियों में रक्ताधान कम हो रहा होता है या बिल्कुल नहीं होता उनमें हृदय संबंधी जटिलताएँ बहुत आम होती हैं। इन रोगियों दीर्घकालिक रक्ताल्पता होती है और इसके साथ ही लौह भी धीरे-धीरे हृदय पर जमता रहता है—इन दोनों ही बातों से हृदय पर काफी जोर पड़ता है जिससे हार्ट-फेल हो सकता है। अपर्याप्त रक्ताधान वाले रोगी या जिनमें रक्ताधान होता ही नहीं। दो दशकों से अधिक आयु तक जीते, और इनकी मृत्यु का प्रमुख कारण हृदय रोग होता है। जिन रोगियों में रक्ताधान तो ठीक प्रकार से होता है पर आयरन कीलेटन चिकित्सा ठीक से नहीं लेते इसका कारण या तो **DFO** आसानी से उपलब्ध नहीं होती (या बहुत महंगी होती है) उन रोगियों को लौह की अधिकता के परिणामस्वरूप हृदय संबंधी जटिलताएँ हो सकती हैं।

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि रक्ताधान के द्वारा एक बड़ी मात्रा में अतिरिक्त लौह शरीर में प्रवेश करता है। यदि इसे निकाला न जाए तो यह हृदय सहित सभरी अंगों पर जम जाता है। हृदय पर जमा हुआ अतिरिक्त लौह धीरे-धीरे इसके सामान्य कार्य में बाधा डालने लगता है और संक्रमणों तथा अन्य रोगों का सामना करने का इसकी क्षमता कम कर देता है। अंततः हृदय की मांस पेशियाँ कमजोर हो सकती हैं जिससे पूरे शरीर में रक्त को पंप करने की इसकी क्षमता में कमी आ सकती है (See 5c)। जिन रोगियों में रक्ताधान तो पर्याप्त होता है पर कीलेटन ठीक प्रकार से नहीं होता उनकी जीवन के दूसरे दशक में प्रायः हृदय संबंधी समस्याओं के कारण मृत्यु हो जाती है।

हृदय के अलग-अलग ऐसे कई भाग हैं जिन पर लौह की अधिकता का प्रभाव पड़ सकता है जैसे कि पेरिकार्डियम, मायोकार्डियम, वाल्व या कंडक्शन टिश्यू। इनमें से प्रत्येक भाग का एक अलग कार्य होता है जिस पर लौह की अधिकता का प्रभाव पड़ सकता है और भिन्न-भिन्न लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे हृदय की धड़कन असामान्य होना (लयहीनता) हृदय की पेशियों के शिथिलन में क्षीणता (डायस्टोलिक डिसफंक्शन), हृदय की पम्पिंग क्रिया में क्षीणता (सिस्टोलिक डिसफंक्शन), ऊतकों में तरल पदार्थ इकट्ठा होना (प्ल्यूरल एक्यूशन, पेरिकार्डियल एक्यूशन, एसाइटिस, पेरिफेरल एडिमा) और हार्ट फेल होने के अन्य लक्षण।

लौह की अधिकता से इतना ही गंभीर हृदय रोग बिना किसी लक्षण के भी हो सकता है। इसलिए रोगियों के लिए यह आवश्यक है कि वे किशोर अवस्था के प्रारंभ से ही एक हृदय रोग विशेषज्ञ द्वारा पूरी तरह से नियमित चेक-अप कराएँ क्योंकि किशोर-अवस्था में उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होती ताकि जब भी लक्षण प्रकट हों उन्हें शीघ्रता से पहचाना जा सके—ये लक्षण हैं घबराहट, बेहोशी (मूर्च्छा), साँस उखड़ना, पेट के ठीक उधर दर्द, व्यायाम करते समय जल्दी थक जाना या टखनों अथवा शरीर के अन्य अंगों पर सूजन।

जब इस प्रकार के लक्षण प्रकट हो जाएँ तो यह समझ लेना चाहिए कि हृदय रोग पहले ही गंभीर अवस्था में पहुँच चुका है। हालांकि जब हृदय का कार्य बुरी तरह प्रभावित हो चुका हो तब भी सघन कीलेटन उपचार से हृदय को सामान्य स्थिति में लाया जा सकता है।

हृदय के कार्य को मानीटर करना

थैलासीमिया के रोगियों को कम से कम वर्ष में एक बार अपना पूरा हृदय रोग विषयक मूल्यांकन (कार्डियक चेक-अप) करवा लेना चाहिए और यदि किसी तकलीफ का पता चले तो यह अधिक बार भी करवाया जाना चाहिए। निम्नलिखित परीक्षण वार्षिक चेक-अप के अनिवार्य अंग हैं :-

- * शारीरिक परीक्षण और इतिवृत्त (लक्षणों के वर्णन सहित)
- * छाती का एक्स-रे, हालांकि कार्डियोलॉजिस्ट को आजकल अधिक सूचना-प्रद तकनीकों उपलब्ध हैं फिर भी छाती का एक्स-रे वहाँ एक उपयोगी साधन बना रहता है जहाँ अधिक परिष्कृत विधियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। इससे हृदय के आकार और फेफड़ों की जानकारी के साथ-साथ मज्जा-बाह्य रक्तोत्पादक पुंज यदि बन रहे हों, तो इसकी चेतावनी भी मिलती है।
- * ई सी जी (इलेक्ट्रॉकार्डियोग्राम)
व्यायाम के साथ ई सी जी परीक्षण से हृदय की लयहीनता की प्रवृत्ति या हृदय के चेम्बरों (वेन्द्रिकलम) के कार्य में आई कमी का पता चलता है।
- * 24 घंटे ई सी जी - इसमें रोगी के साथ एक विशेष मानीटर (होल्टर) पूरे 24 घंटों के लिए लगा दिया जाता है। इससे हृदय की लयबद्धता में आई उस असामान्यता का भी पता लग जाता है जो छोटी अवधि की ई सी जी रिकार्डिंग में छूट सकती है।
- * ईकोकार्डियोग्राफ - यह एक बड़ा ही उपयोगी साधन है। इससे हृदय के चेम्बरों के आकार और हृदय का प्रत्येक अंग कैसा कार्य कर रहा है इसका पता चलता है।
- * **MUGA** स्कैन : यह रेडियोआइसोटोप परीक्षण है। इससे हृदय के कार्य के विषय में और अधिक जानकारी मिलती है। यह परीक्षण रोगी की विश्राम की अवस्था में भी किया जा सकता है पर यदि इसे व्यायाम करते हुए किया जाए तो परिणाम अधिक ठीक शुद्ध मिलते हैं।

थैलासीमिया मेजर के रोगियों में हृदय रोगों की रोकथाम के लिए ये उपाय किए जाने चाहिए;

- * जिन रोगियों में हृदय संबंधी जटिलताएँ नहीं हैं उन्हें पर्याप्त मात्रा में रक्त मिलना चाहिए ताकि उनका हीमोग्लोबिन सुझाए गए स्तर

अर्थात् 9.5-10 ग्राम/डे.ली. के आस-पास बना रहे।

- * हृदय संबंधी जटिलताओं वाले रोगियों को पर्याप्त मात्रा में रक्त मिलना चाहिए ताकि उनका रक्ताधान पूर्व हेमोग्लोबिन का स्तर 10-11 ग्रा./डे.ली. बना रहे जिससे हृदय की मांसपेशियों का ऑक्सीजनकरण सुनिश्चित हो सके। हृदय पर अनावश्यक जोर न पड़े। इसलिए रोगी को सांद्रित लाल रक्त कोशिकाओं के छोटे रक्ताधान जल्दी-जल्दी देने चाहिए।

यदि हार्टफेल होना प्रमाणित हो गया है तो चिकित्सा के विवेकानुसार प्रत्येक रक्ताधान के साथ कोई मूत्रवर्धक दवा दी जा सकती है।

- * हृदय रोग या लौह की बहुत अधिक मात्रा वाले रोगियों को बहुत सघन आयरन कीलेटन कार्यक्रम का पालन करना चाहिए। हो सके तो इसमें 50-60 मि.ग्रा./कि.ग्रा. दिन की खुराक में 24 घंटे लगातार डेसफेरिऑक्सामिन लगवाना चाहिए (त्वचा के नीचे या शिरा में लगे कैथेटर के जरिए)।
- * हाल के अध्ययनों से भी यह पता चला है कि डेसफेरिऑक्सजीन और डेफेरिप्रोन के साथ-साथ प्रयोग (कम्बिनेशन थेरेपी) के द्वारा हृदय से अतिरिक्त लौह की मात्रा अधिक शीघ्रता से कम होती है और इस प्रकार हृदय के कार्य में सुधार आता है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि थैलासीमिया में सघन कीलेटन के द्वारा गम्भीर हृदय रोगों को भी पलटा जा सकता है।

एक बार हृदय रोग संबंधी जटिलताएँ आ जाने पर आयरन कीलेटन चिकित्सा आरम्भ करने से तो यह कहीं अधिक बेहतर है कि इसका प्रयोग हृदय रोग को होने से रोकने के लिए किया जाए। हृदय के ऊतकों में लौह की मात्रा का पता लगाना एक कठिन कार्य रहा है पर **MRI** के उपयोग में हाल में हुई प्रगति से यह पता चलता है कि हृदय में लौह की मात्रा को सीधे नापने के लिए यह तकनीक बहुत आशाजनक हो सकती है। संक्षेप में थैलासीमिया मेजर में हृदय संबंधी जटिलताओं की चिकित्सा ऊतकों में जम लौह को निकालने के लिए की जाने वाली सघन चिकित्सा पर निर्भर होती है। यह उन परम्परागत दवाओं के अतिरिक्त है जिनका प्रयोग क्षीण होती जा रही हृदय की मांसपेशियों को सहारा देने के लिए किया जाता है : जैसे कि

(1) वे दवाएँ जो हृदय की पंपिंग क्रिया में सुधार लाती हैं वे मुख्य रूप से उस वर्ग की दवाएँ हैं जिन्हें एन्जियोटेन्सिन कनवर्टिंग एन्जाइम या **ACE** निरोधक कहा जाता है।

(2) मूत्र वर्धक दवाएँ जो कन्जेस्टिव हार्ट फेल्योर के रोगियों को सांस उखड़ने से राहत देती हैं।

(3) वे दवाएँ जो हृदय की लयबद्धता में आई अनियमितता को ठीक करती हैं (एंटी-एरिदमिक दवाएँ)

अन्य रोग जैसे कि अंतःस्रावी जटिलाएँ जो हाइपोथायराइडिज्म और हाइपोपैराथायराइडिज्म के कारण उत्पन्न होती हैं या विटामिन-सी की कमी से भी हृदय की मांसपेशियों के रोग हो सकते हैं। हालांकि अन्तर्निहित कारण (अंतःस्रावी समस्याएँ या विटामिन सी की कमी) का उपचार करने से ये रोग प्रायः पलटे जा सकते हैं।

अंतःस्रावी जटिलताएँ

अंतःस्रावी तंत्र में कई ग्रंथियाँ होती हैं—पिट्यूटरी, थायराइड, पैराथायराइड, एड्रीनल और पेन्क्रियाटिक बीटा सेल तथा पुरुषों में टेस्टीज और स्त्रियों में ओवरीज ये ग्रंथियाँ हार्मोन बनाने और उन्हें स्रावित करने के लिए उत्तरदायी होती हैं। अपनी कोशिकाओं जमे अतिरिक्त लौह के विषैले प्रभाव से ये भी असुराित होती हैं जो हार्मोन बनाने का प्रक्रिया में बाधा डालता है। इसलिए अंतःस्रावी तंत्र संबंधी जटिलताएँ थैलासीमिया के रोगियों में एक आम समस्या है, यह उन रोगियों में भी है जो जल्दी लेना आरंभ कर देते हैं। अंतःस्रावी विकारों में धीमा विकास, निलंबित यौवनारंभव (वयःसन्धि), मधुमेह, हाइपोथायराइडिज्म, हाइपोपैराथायराइडिज्म और वयस्कों में यौन क्रियाओं का अभाव शामिल है।

विकास :

थैलासीमिया मेजर के रोगियों में लगभग 30-50 प्रतिशत रोगी बाधित विकास से प्रभावित होते हैं, इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे दीर्घकालिक रक्ताल्पता, तिल्ली के आकार में वृद्धि, लौह की अधिकता, डिसफेरिऑक्सामिन की विषाक्तता, हाइपोथायराइडिज्म और दीर्घकालिक यकृत रोग, ये सब विकास पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कारण हैं जैसे ग्रोथ हार्मोन की कमी या इसके कार्य में बाधा, आनुवांशिक श्वानुकूलता, पोषण में कमी और भावात्मक दबाव। जिन देशों में रोगियों को उपयुक्त उपचार नहीं मिलता उन देशों में दीर्घकालिक रक्ताल्पता और अनुपयुक्त पोषण विकास में कमी के प्रमुख कारण हैं जबकि जिन देशों में रोगियों का रक्ताधान तो ठीक प्रकार से होता है पर वे कीलेटन उपचार ठीक प्रकार नहीं लेते उनमें विकास के अभाव का प्रमुखकारण लौह की अधिकता होती है। तथापि ठीक प्रकार से रक्ताधान और कीलेटन उपचार लेने वाले रोगियों में डेसफेरिऑक्सामिन की अधिक मात्रा हड्डियों के स्तर पर विषाक्तता उत्पन्न कर सकती है जिससे अंततः विकास में बाधा आती है।

विकास संबंधी रोगों की प्रभावी चिकित्सा इनके कारणों का ठीक से पता लगाने पर निर्भर करती है। इसलिए निदान में प्रारंभिक शैशवावस्था से किशोरावस्था तक ध्यानपूर्वक नियमित चिकित्सालयीन और प्रयोगशाला परीक्षण अनिवार्य रूप से अपेक्षित होते हैं। ग्रोथ हार्मोन के निकलने और बाद में उसके प्रभाव के मूल्यांकन से परस्पर-विरोधी परिणाम मिले हैं जिससे ग्रोथ हार्मोन का प्रयोग केवल उन्हीं रोगियों

तक सीमित हो गया है जिनमें ग्रोथ हार्मोन की कमी सिद्ध हो गई हो और जिनके चिकित्सा परिणाम संतोष जनक हों।

विलंबित वयःसंधि और हाइपोगोनेडिज़्म

वयःसंधि के आरंभ में हाइपोथेलमस-यह मस्तिष्क का वह भाग है जो पिट्यूटरी ग्रंथि के बिल्कुल पास होता है। गोनेडोट्रोफिन-रिलीजिंग हार्मोन (GNRH) फॉलिकल स्ट्रियुलेटिंग हार्मोन (FSH) और ल्यूटरिनाइजिंग हार्मोन (LH) बनाने और निकालने के लिए पिट्यूटरी ग्रंथि को प्रेरित करता है।

ये हार्मोन यौन ग्रंथियों-पुरुषों में टेस्टीज और स्त्रियों में ओवरीज पर क्रिया करते हैं जिससे इनका विकास होता है और ये सेक्स हार्मोन बनाने और स्रावित करने लगते हैं। ये सेक्स हार्मोन पूरे शरीर में हर जगह जाकर नर और मादा यौन अंगों और प्रजनन क्षमता के विकास को नियंत्रित करते हैं। पिट्यूटरी ग्रंथि, जिसमें FSH और LH बनते हैं, मुक्त लौह के हानिकारक प्रभावों के लिए विशेष रूप से संवेदनशील होती है इससे इन हार्मोनों को बनाने की इसकी क्षमता में कमी आ जाती है।

विभिन्न देशों में किए गए लगभग सभी अध्ययनों में यह विवरण मिलता है कि विलंबित वयः संधि और हाइपोगोनेडिज़्म लौह से संबंधित सर्वाधिक सामान्य जटिलताएँ हैं। विलंबित वयःसंधि को यौन विकास के पूर्ण अभाव के रूप में परिभाषित किया जाता है। यौन विकास से तात्पर्य है 13 वर्ष की आयु तक लड़कियों में स्तनों के आकार में वृद्धि और 14 वर्ष की आयु तक लड़कों में टेस्टीज के आकार में वृद्धि। यदि 16 वर्ष की आयु तक वयःसंधि का कोई लक्षण प्रकट नहीं होता है तो यह निदान कर लिया जाता है कि रोगी को हाइपोगोनेडिज़्म है। इसमें लड़कों में वृषण और लिंग आकार में छोटे रह जाते हैं जब लड़कियों में स्तन विकसित नहीं होते और मासिक चक्र की शुरुआत नहीं होती (प्राइमरी एमेनोरिया)। यह स्थिति प्रायः महत्वपूर्ण मानसिक दबावों को जन्म देती है। विलंबित वयःसंधि का उपचार इसके कारण का ठीक-ठीक पता लगाने पर निर्भर करता है। शरीर में लौह की अधिक मात्रा यौन विकास के किसी भी चरण में बाधा उत्पन्न किया गया है, यह प्रत्येक व्यक्ति को अलग प्रकार से प्रभावित करती है। इसलिए प्रत्येक केस में विस्तृत चिकित्सालयीन परीक्षणों पर आधारित ध्यानपूर्वक किए गए निदान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की जटिलताओं की स्थिति को सुधारने में उपयुक्त आयरन कीलेटन चिकित्सा एक अनिवार्य भूमिका निभाती है। इसके अतिरिक्त रैखिक विकास लम्बाई में वृद्धि और यौन लक्षणों के विकास तथा यौन अंगों के आकार में वृद्धि देने के लिए सेक्स स्टीरॉयड (लड़कों को टेस्टोस्टेरिन और लड़कियों को इस्ट्रोजन) दिए जाते हैं।

रोगी में वयः संधि सामान्य होने पर भी अंतःस्रावी तंत्र लौह की अधिकता के प्रभावों के प्रति संवेदनशील बना रहता है क्योंकि शरीर में इसके बाद जमा होने वाला लौह भी पिट्यूटरी या यौन ग्रंथियों को क्षति पहुंचा सकता है। ऐसे मामलों में मादा रोगी का मासिक चक्र बंद हो सकता है (सेकंड्री एमेनोरिया) जब कि नर रोगियों में परवर्ती नपुंसकता, वीर्य के उत्पादन में कमी और बध्यता हो सकती है।

हाइपोथायराइडिज़्म

थायराइड ग्रंथि गर्दन में स्थित होती है यह जीवन के प्रारंभिक वर्षों में मस्तिष्क के सामान्य विकास में और बाद के वर्षों में व्यापक रूप से वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

थायराक्सिजन एक हार्मोन है जो थायराइड ग्रंथि द्वारा उत्पादित किया जाता है। यह व्यक्ति के समग्र ऊर्जास्तर और उपापचय में मेटोबोलिज्म सहायक होता है। हालांकि जब लौह इस ग्रंथि में जमा हो जाता है तो इसकी थायराक्सिजन उत्पन्न करने की क्षमता में कमी आ जाती है। इस दशा को प्राइमरी हाइपोथायराइडिज़्म कहते हैं।

प्राइमरी थायराइडिज़्म से पीड़ित रोगियों को अत्यधिक सर्दी और उनींदेपन का अनुभव हो सकता है और इनमें प्रायः भारत में वृद्धि के साथ मानसिक और शारीरिक सुस्ती के लक्षण पाए जाते हैं। लौह जमा होने के कारण थायराइड को हुई गंभीर क्षति हृदय के कार्य को भी प्रभावित कर सकती है। इस दशा में शारीरिक लक्षण हमेशा नहीं मिलते। इसलिए इसके निदान का सबसे अच्छा तरीका नियमित प्रयोगशाला परीक्षण (TSH, T₃ और T₄) हैं, जो दस वर्ष की आयु के बाद प्रतिवर्ष किए जाते हैं। जब प्रयोगशाला परीक्षणों से हाइपोथायराइडिज़्म की पुष्टि हो जाए, (बढ़ा हुआ TSH और सामान्य कम फ्री T₄) तो चिकित्सा के रूप में थायराक्सिजन दिया जाता है-रोगी में शारीरिक लक्षण हैं अथवा नहीं हैं इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

हाइपोपैराथायराइडिज़्म

पैराथायराइड ग्रंथियों की संख्या चार होती है। ये थायराइड ग्रंथि से जुड़ी रहती हैं। इन ग्रंथियों का प्रमुख कार्य पैराथार्मोन नामक हार्मोन के द्वारा शरीर में कैल्शियम के स्तर को नियंत्रित करना है। पैराथार्मोन पैराथायराइड ग्रंथियों द्वारा बनाया और स्रावित किया जाता है। लौह की अधिकता और रक्ताल्पता पैराथायराइड के कार्य को प्रभावित करती है जिसके परिणामस्वरूप हाइपोपैराथायराइडिज़्म हो जाता है। इसके कारण शरीर में कैल्शियम का स्तर गिर जाता है। इस दशा को हाइपोकैल्सीमिया कहते हैं और इसके कारण इसी प्रकार एक अन्य आवश्यक तत्व फॉस्फोरस के स्तर में भी कमी आ जाती है।

कैल्शियम और फॉस्फोरस के स्तर का संबंध कड़ रोग-लक्षणों से है। कैल्शियम के स्तर में कमी के कारण हाथों और पैरों में झुनझुनी और चुभन का अनुभव हो सकता है और कभी-कभी मरोड़ और माँसपेशियों की ऐंठन भी हो सकती है। सामान्यतः दौरे पड़ जाना

और हृदय का ठीक प्रकार से कार्य न करना इसके विलंबित लक्षण हो सकते हैं। रक्त में कैल्शियम, फॉस्फोरस और पैराथामोन के स्तरों का प्रयोगशाला परीक्षण निदान करने में सहायक हो सकता है। चिकित्सा के रूप में कैल्शियम और बिटामिन-डी दिए जाने से उपापचय (मेटाबोलिक) संबंधी विकार ठीक हो सकते हैं, बहुत अधिक हाइपोकैल्सीमिया के साथ गम्भीर मरोड़ के बिरले कसों में कैल्शियम शिरा के माध्यम से भी दिया जा सकता है।

डायबिटीज मेलिटस-मधुमेह

दीर्घकालिक लौह की अधिकता, दीर्घकालिक यकृत रोग, वायरल संक्रमण और आनुवंशिक कारकों से जुड़ी एक सामान्य जटिलता है। ग्लूकोज के संतुलन में गड़बड़ी जो अंततः डायबिटीज का रूप ले लेती है। डायबिटीज मेलिटस को हाइपरग्लाइसीमिया की उपस्थिति के रूप में परिभाषित किया जाता है अर्थात् फास्टिंग ब्लडशुगर > 120 मि.ग्रा./डे.ली. या रेंडम ब्लड शुगर > 200 लि.ग्रा./डे.ली.। जबकि दिए गए ग्लूकोज की प्रतिक्रिया में पेन्क्रियाज बीटा कोशिकाओं द्वारा उपयुक्त मात्रा में इन्सुलिन का स्राव न कर पाने को ग्लूकोज इनटॉलरेंस कहा जाता है। थैलासीमिया मेजर के सभी रोगियों में से लगभग आधे रोगी ग्लूकोज इनटॉलरेंस से पीड़ित होते हैं। जबकि 10-30 प्रतिशत को जीवन में किसी समय डायबिटीज हो जाती है। परिवार में किसी को डायबिटीज होना, विशेष रूप से प्रथम-कोटि के संबंधी को समान्यतः माता या पिता को डायबिटीज की संभावना अधिक होने का संकेत है। जब शरीर का ग्लूकोज मेटाबोलिज्म भंग हो जाता है तो डायबिटीज हो जाती है इससे ग्लूकोज कोशिकाओं के अंदर प्रवेश नहीं कर पाता और कोशिकाओं को उनके कार्य के लिए आवश्यक ऊर्जा उपलब्ध नहीं करा पाता। पेन्क्रियास शरीर का वह अंग है जो ग्लूकोज के मेटाबोलिज्म के लिए उत्तरदायी है यह आमाशय के पास स्थित होता है और अपनी बीटा कोशिकाओं के द्वारा इन्सुलिन का उत्पादन करता है, इन्सुलिन एक हार्मोन है जो शुगर के मेटाबोलिज्म का कार्य करता है। लौह इन विशेष बीटा कोशिकाओं को क्षति पहुँचा सकता है और इस प्रकार शुगर का उपयोग करने की शरीर की क्षमता में कमी आ जाती है तथा शुगर रक्त में इकट्ठी होती रहती है।

जिन रोगियों को मध्यम प्रकार की डायबिटीज सिं ग्लूकोज इनटॉलरेंस कहते हैं, होती हैं उनमें कोई शारीरिक लक्षण दिखाई नहीं देता, उनका निदान-प्रयोगशाला परीक्षण के द्वारा ही किया जा सकता है। अनुसंधानों से यह पता चलता है कि डायबिटीज होने से पहले थैलासीमिया के रोगी ग्लूकोज इनटॉलरेंस की स्थिति से गुजरते हैं जिसके दौरान इंसुलिन की क्रिया में क्षीणता के परिणामस्वरूप इसका उत्पादन वास्तव में बढ़ जाता है। इस अवस्था को इंसुलिन प्रतिरोध की अवस्था कहते हैं इसको सावधानी पूर्वक मानीटर करने की आवश्यकता होती है रोगी को समुचित आहार लेने यदि आवश्यक हो तो शरीर का भार कम करने और इसके साथ-साथ अधिक सघन आयरन कीलेटन उपचार लेने की आवश्यकता होती है।

ग्लूकोज इनटॉलरेंस और डायबिटीज मेलिटस का निदान खाना खाने से पहले और बाद की अलग-अलग अवधियों में रक्त में ग्लूकोज के स्तर की जाँच के द्वारा किया जाता है। उदहारण के लिए प्रातः काल कुछ खाने या कोई पेय पदार्थ लेने से पहले रक्त में ग्लूकोज का स्तर 7 मि. मोल/लि. (या 126 मि.ग्रा./डे. लि.) या इससे अधिक हो तो यह डायबिटीज का निदान सूचक है। ग्लूकोज लेने के दो घंटे बाद रक्त में ग्लूकोज का स्तर 11 मि. मोल/लि. (200 मि.ग्रा./डे.लि.) से अधिक हो तो यह भी डायबिटीज का निदान-सूचक है। 75 ग्राम ग्लूकोज खाने के दो घंटे बाद रक्त में ग्लूकोज का स्तर 8-11 मि.मी./कि. के बीच (140-200 मि.ग्रा./डे.लि.) हो तो इसे क्षीण ग्लूकोज इनटॉलरेंस का सूचक कहते हैं। यह ग्लूकोज इनटॉलरेंस का सूचक है। 10 वर्ष से अधिक आयु के सभी रोगियों का वर्ष में एक बार ग्लूकोज टॉलरेंस टेस्ट कराया जाता है।

डायबिटीज मेलिटस में, जो कि इस रोग का गंभीर प्रकार है इसमें इंसुलिन का उत्पादन गंभीर रूप से प्रभावित होता है और रोगी को ब्लड ग्लूकोज के स्तर को सामान्य करने के लिए प्रतिदिन त्वचा के नीचे इंसुलिन का इंजेक्शन लेना पड़ता है। डायबिटीज एक उपचार योग्य रोग है फिर भी इसका उपचार एक अतिरिक्त बोझ फिर भी है, इसलिए चिकित्सकों, परिवारजनों और मित्रों की सहायता अनिवार्य है। डायबिटीज के रोगियों को ग्लूकोमीटर की सहायता से घर पर ही दिन में तीन या चार बार अपने रक्त में ग्लूकोज के स्तर की जाँच आवश्यक करनी चाहिए। घर पर की गई इस मॉटीटरिंग के परिणाम चिकित्सक को रोगी की आवश्यकता के अनुसार इंसुलिन की मात्रा निश्चित करने में सहायक होते हैं। डायबिटीज की जटिलताओं की तीव्रता का मूल्यांकन करने के लिए अन्य प्रयोगशाला और क्लीनिकल परीक्षण, आँखों के फंडस का चित्रण इन अंगों को डायबिटीज से सबसे ज्यादा आमतौर पर नुकसान होता है।

थैलासीमिया के रोगियों को डेसकोरिऑक्सामिन चिकित्सा नियमित रूप से लेते रहने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए क्योंकि इस दवा के समुचित प्रयोग से डायबिटीज होने की संभावना को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

ऑस्टिओपोरोसिस

पतली और कमजोर हड्डियाँ थैलासीमिया की एक सामान्य समस्या है : इसके कई कारण हैं : रक्ताल्पता, अतिसक्रिय अस्थिमज्जा, आहार में कैल्शियम की कमी, हड्डियों में लौह की अधिकता, पोषण में कमी, विलंबित वयःसंधि या हाइपोगोनेडिज्म और अन्य संबंधित अंतःस्रावी समस्याएँ तथा इनके साथ आनुवंशिक कारक ये सभी ऑस्टिओपोरोसिस उभारने में सहायक होते हैं। (देखें 5e)। जिन रोगियों को अस्थि रोग होते हैं उनमें प्रायः शारीरिक सक्रियता में कमी और हाथ-पैरों में गंभीर विकृतियाँ होती हैं और उन्हें फ्रेक्चर

हो जाते हैं जो अत्यंत चिंताजनक होते हैं।

यदि अन्य प्रयोगशाला परीक्षण इसका संकेत दें तो अस्थिरोगों का निदान रीड और कूल्हे की हड्डियों के घनत्व को नापकर किया जाता है। इसके लिए DEXA विधि का उपयोग किया जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार यदि अस्थि घनत्व सामान्य से घटकर -1 से -2.5 से कम है तो यह अस्टिओपोरोसिस (अस्थिसुषिरता) है। अस्थि रोगों की चिकित्सा प्रमुखतः रोकथाम पर केन्द्रित होती है, इसमें नियमित रक्ताधान, अच्छा कीलेटन, अंतःस्रावी विकारों का उपचार और नियमित व्यायाम सम्मिलित है।

जिन रोगियों को ऑस्टिपीनिआ हो गया है उनमें ऑस्टियोरोसिस की शुरुआत को रोकने के लिए उन्हें सलाह दी जाती है कि वे धूम्रपान न करें, कैल्शियम से भरपूर आहार लें और अतिरिक्त विटामिन डी लें इसके साथ नियमित व्यायाम भी करें। इसके अतिरिक्त जिन रोगियों में हाइपोगोनेडिज़्म पाया गया हो उनमें ऑस्टिओपोरोसिस की रोकथाम के लिए उन्हें सेक्स हार्मोन दिए जाने चाहिए।

यदि एक बार ऑस्टिओपोरोसिस हो जाए तो बाइफास्फोनेट्स (पामिड्रोनेट) जैसी कुछ दवाएं देने से कुछ लाभ होता है।

जनन क्षमता और प्रजनन

जिन स्त्रियों को थैलासीमिया होता है वे गर्भकाल सुरक्षित रूप से पूरा कर लेती हैं। फिर भी किसी दम्पति को गर्भाधारण का निर्णय अपने चिकित्सक से परामर्श करके सावधानीपूर्वक लेना चाहिए। जो स्त्रियां गर्भवती होना चाहती हैं उन्हें अपनी रोग-विषयक और मनोवैज्ञानिक स्थिति का पूरा मूल्यांकन करवा लेना चाहिए।

जिन स्त्रियों को थैलासीमिया है और उनका मासिक चक्र नियमित है वे सहजता से गर्भ धारण कर लेती हैं पर जिन्हें प्राथमिक या परवर्ती मासिक स्रावरोध उन्हें डिम्ब के उत्पादन और डिम्बोत्सर्जन के लिए हार्मोन चिकित्सा की आवश्यकता होती है। थैलासीमिया के पुरुष रोगियों को जिनमें शुक्राणुहीनता होती है एक वर्ष तक चलने वाली हार्मोन सम्मिश्रण चिकित्सा से लाभ होता है।

जैसे ही इसकी पुष्टि हो जाए कि महिला रोगी गर्भवती है, निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए :

1. गर्भ का निदान होते ही DFO बंदकर देना चाहिए क्योंकि भ्रूण पर इस दवा का क्या प्रभाव पड़ता है यह स्पष्ट नहीं है। फिर भी पशुओं पर किए गए अध्ययनों से इसके द्वारा भ्रूण को गम्भीर क्षति देखी गई है। यदि गर्भवती महिला रोगी में लौह की अधिकता बहुत ज्यादा हो या उसे हृदय संबंधी कोई गंभीर समस्या हो तो गर्भ की बाद की अवस्थाओं में इसे कम मात्रा 20-30 मि.ग्रा./कि.ग्रा. प्रतिदिन दिया जा सकता है।
2. गर्भवती स्त्रियों में रक्ताधान कम मात्रा में पर जल्दी-जल्दी किया जाता है ताकि हीमोग्लोबिन का स्तर संतोषजनक (10-15 ग्रा./डेसिलि.) बना रहे।
3. हृदय के कार्य को सूक्ष्मता से मानीटर करना चाहिए क्योंकि अनुसंधानों से यह पता चला है कि जिन महिलाओं में गर्भावस्था के प्रारंभ में फेरिटिन का स्तर कम होता है है उनमें हृदय उन महिलाओं की अपेक्षा अधिक ठीक प्रकार से कार्य करता है जिनमें फेरिटिन का स्तर अधिक होता है। डायबिटिज मेलिटस तथा अन्य अंतःस्रावी विकारों के लिए रोगी को मॉनीटर किया जाना चाहिए।

थैलासीमिया के वे रोगी जिन्होंने जनन-क्षमता संबंधी समस्याओं के लिए समुचित चिकित्सा ली, हाल के वर्षों में स्वस्थ संतान पाने में सफल हुए हैं। उन दम्पतियों में जिनमें दोनों को ही थैलासीमिया है, और जो एक स्वस्थ संतान पाना चाहते हैं, एक स्वस्थ दाता के शुक्राणु या डिम्बाणु को निषेचन प्रक्रिया में प्रयोग किया जाता है, यह प्रक्रिया शरीर के बाहर प्रयोगशाला में पूरी की जाती है और निषेचित डिम्बाणु को महिला के गर्भाशय में प्रवेश करा दिया जाता है।

इन रोगियों की चिकित्सा और बाद की देख-भाल में एक समुचित सामूहिक भावना की आवश्यकता होती है जिसमें हीमोटोलॉजिस्ट, पीडिएट्रीशियन, कार्डियोलॉजिस्ट, एंडोक्रिनोलॉजिस्ट और गायनिकोलॉजिस्ट एक दल के रूप में कार्य करते हैं।

निष्कर्षतः : थैलासीमिया मेजर या इंटरमीडिया के रोगियों में प्रजनन अब एक वास्तविकता है। उदाहरण के लिए साइप्रस में थैलासीमिया की 62 महिला रोगियों में (थैलासीमिया मेजर की 50 और इंटरमीडिया की 12) निकी औसत आयु 25 वर्ष है, 90 गर्भ धारण हुए इनमें से 14 प्रजनन सहायता द्वारा प्रेरित डिम्बोत्सर्ग, टेस्ट ट्यूब निषेचन (IVF) और वीर्य-संसेचन के माध्यम से हुए।

87 स्वस्थ शिशुओं ने जन्म लिया, 69 पूर्ण अवधि, 12 अवधि पूर्व इनमें 4 जुड़वा, 1 त्रायी।

7 गर्भपात हुए और 2 मृतजात। प्रसूति संबंधी कोई गंभीर जटिलता नहीं देखी गई, 9 रोगियों में हृदय संबंधी अल्पकालिक जटिलताएँ देखी गईं।

अध्याय 6

थैलासीमिया में संक्रमण

थैलासीमिया मेजर के रोगियों में निम्नलिखित कारणों से संक्रमण की संभावना अधिक होती है :

- * रक्ताल्पता
- * तिल्ली का निकाला जाना
- * लौह की अधिकता
- * रक्ताधान
- * डेसफेरिऑक्सामिन (DFO) का प्रयोग

रक्ताल्पता :

यदि रोगी को रक्त कम मात्रा में दिया जा रहा है या बिल्कुल नहीं दिया जा रहा है तो रक्ताल्पता ऐसे रोगियों में न्यूमोनिया जैसे गम्भीर संक्रमणों का सबसे महत्वपूर्ण कारण होती है। पश्चिमी देशों में ऐसी कोई समस्या ही नहीं है क्योंकि वहां उपयुक्त रक्त सरलता से उपलब्ध हो जाता है, विकासशील देशों में रोगी को पर्याप्त रक्त न मिल पाना एक आम समस्या है इसलिए इस प्रकार के संक्रमण होने की संभावना बनी रहती है।

तिल्ली का निकाला जाना

जिन रोगियों में रक्ताधान चिकित्सा काफी जल्दी आरंभ नहीं की या जिनकी तिल्ली निकाल दी गई है उनमें गम्भीर संक्रमणों की संभावना बहुत अधिक होती है। संभावित संक्रमणों में स्ट्रेप्टोकोकस न्यूमोनिया, हीमोफिलस इन्फ्लुएंजा और एनकोप्स्युलेटिका बैक्टीरिया से होने वाला नीसेरिया मेनिजिटाइडस। अन्य बैक्टीरिया, वायरस और पैरासाइट भी उन रोगियों के संक्रमण कर सकते हैं जिनकी तिल्ली निकाल दी गई हो।

लौह की अधिकता

जिन रोगियों में रक्ताधान हो तो समुचित रूप से हुआ हो पर डेसफेरिऑक्सामिन मिलने से कठिनाई के कारण या उसे ठीक से न लेने के कारण उपयुक्त कीलेटन न हुआ हो तो इससे उन रोगियों में गम्भीर संक्रमण होने की संभावना भी बढ़ जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि संक्रामक जीवाणु आदि लौह पर पनपते हैं। शरीर में लौह की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी ही शीघ्रता से ये संक्रमण कारक बढ़ेंगे और अपनी संख्या बढ़ाएंगे और बहुत गंभीर संक्रमणों का कारण बनेंगे। सबसे प्रमाणिक विवरण बेक्टीरियम यरसीनिया एन्टेरोकोलाइटिका से होने वाले संक्रमण के विषय में मिलता है। यह एक विशेष प्रकार का संक्रमण कारक है, अन्य बैक्टीरिया की तरह इसमें वातावरण से स्वयं लौह ग्रहण करने और उसका उपयोग करने की अपनी कोई प्रणाली नहीं होती। स्वस्थ व्यक्तियों में यह बैक्टीरिया कोई हानि नहीं करते इसलिए उनके संदर्भ में चिकित्सा की दृष्टि से इनका कोई महत्व नहीं है। तथापि थैलासीमिया मेजर में जहां अतिरिक्त लौह या तो मुक्त अवस्था में होता है अथवा डिसफेरिऑक्सामिन के अणु के साथ संबद्ध होता है, यरसीनिया तेजी से पनपता है और अपनी संख्या बढ़ाता है तथा गंभीर और जीवन को संकट में डालने वाले संक्रमणों में लौह की भूमिका पर अधिक कार्य किया गया है पर वायरल संक्रमणों (जैसे हेपेटाइटिस और एड्स) में लौह की भूमिका पर भी पर्याप्त अनुसंधान हुआ है। इन अनुसंधानों में यह जाँच की गई है कि इन संक्रमणों के बढ़ने में लौह की क्या भूमिका हो सकती है और परामर्शित दवाओं से उपचार पर इन संक्रमणों की क्या प्रतिक्रिया होती है। इन अनुसंधानों के परिणाम यह दर्शाते हैं कि थैलासीमिया मेजर में क्रॉनिक हीपेटाइटिस B और C के खराब चिकित्सा परिणाम और क्रॉनिक वायरल हीपेटाइटिस के उपचार के प्रभाव में कमी का संबंध लौह की अधिकता से हो सकता है। इसलिए ऐसा लगता है कि इन रोगियों में क्रॉनिक वायरल हेपेटाइटिस के चिकित्सा परिणामों में आयरन कीलेटन थैरेपी के प्रभावकारी होने की महत्वपूर्ण भूमिका है।

यह भी सिद्ध हो गया है कि थैलासीमिया मेजर के रोगियों में HIV संक्रमण उस समय अधिक तीव्र हो जाते हैं। जब उनके आयरन कीलेटन में DFO की मात्रा शरीर के भार के अनुसार 40 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम हो या उनके रक्त में फेरिटिन का स्तर 1935 माइक्रोग्राम/ली. से ऊपर हो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि थैलासीमिया मेजर में संक्रमणों की तीव्रता बढ़ाने में लौह की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। क्योंकि लौह—

- (1) रोगाणुओं के पनपने में पोषण का कार्य कर सकता है। ये एन्जाइम संक्रामक जीवाणुओं की संख्या बढ़ाने में सहायक होते हैं।
- (2) प्रोटीन जो एन्जाइम कहलाती हैं उनके लिए पोषण का कार्य कर सकता है, ये एन्जाइम संक्रामक जीवाणुओं की संख्या बढ़ाने में सहायक होते हैं।

- (3) एंटीऑक्सीडेंट्स को हटा सकता है, ये महत्वपूर्ण रसायन होते हैं जो शरीर की कोशिकाओं की शोथ या सूजन से रक्षा करते हैं।
(4) संक्रमणों से शरीर की रक्षा करने वाली एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं के क्षति पहुँचा सकता है।

रक्ताधान से जुड़े संक्रमण

रक्त को काफी लम्बे समय से ऐसे संक्रमण कारकों का प्रमुख स्रोत माना जाता रहा है जो रक्ताधान के द्वारा रोगियों में पहुँचाए जा सकते हैं। अतः यद्यपि रक्त जीवन बचा सकता है, यह कई गम्भीर जीवन के लिए घातक अवांछित प्रतिक्रियाओं का कारण भी हो सकता है। अनेकों प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु रक्त में कुछ समय के लिए जीवित रह सकते हैं और जब रक्ताधान किया जाता है तो ये रोगियों को संक्रमित कर देते हैं। इनमें हेपेटाइटिस B और C तथा HIV 1 और 2 शामिल हैं जो नैदानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रोगाणु हैं और गम्भीर दीर्घकालिक संक्रमणों का कारण बन सकते हैं।

यूरोप और उत्तरी अमरीका में उन्नत रक्ताधान सेवाओं, टीकाकरण कार्यक्रमों, दाता के रक्त की जाँच और जन-स्वास्थ्य सेवाओं के उच्च स्तर के कारण इन रोगाणुओं का संचरण आज शायद ही कहीं देखने को मिले। इन देशों में HBV, HEV और HIV के संक्रमण लगभग समाप्त ही हो चुके हैं। कई विकासशील देशों में हालांकि रक्ताधान के कारण संक्रमण अब भी होते हैं जिसका कारण है रक्ताधान सुविधाओं का खराब स्तर, खंडित स्वास्थ्य सेवाएँ, सीमित संसाधन और अन्य स्वास्थ्य प्राथमिकताओं को पूरा करने की चुनौती। इसके परिणामस्वरूप कई विकासशील देशों में थैलासीमिया मेजर के रोगी अब भी रक्ताधान के द्वारा संक्रमित हो रहे हैं। थैलासीमिया मेजर के रोगियों में हेपेटाइटिस B अथवा C के संक्रमणों का विशेष नैदानिक महत्व है क्योंकि लौह से संबंधित जिगर यकृत के रोग को यह और भी बढ़ा देते हैं। थैलासीमिया के रोगियों में जिगर के रोग आमतौर से होते हैं, या तो ये थैलासीमिया के कारण ही होते हैं या आयरन कीलेटन थेरेपी ठीक प्रकार से न होने के कारण होते हैं। औद्योगिक देशों में मुख्यतः बड़ी आयु के थैलासीमिया के रोगियों में और विकासशील देशों में प्रायः सभी आयु-वर्ग के रोगियों में अस्वस्थता और मृत्यु का कारण सामान्यतः जिगर रोग होता है।

हेपेटाइटिस B वायरस (HBV) संक्रमण

विकासशील देशों में आज भी क्रॉनिक हेपेटाइटिस B (CHB) संक्रमण जन-स्वास्थ्य के लिए एक गंभीर समस्या बना हुआ है। जबकि प्रभावी और वैक्सिन और डोनर के रक्त की जाँच के लिए निरापद व्यावसायिक रूप से उपलब्ध उच्च स्तर के परीक्षण काफी समय से उपलब्ध हैं।

संचार

हेपेटाइटिस B का वायरस रक्ताधान के अतिरिक्त और भी कई प्रकार से संचारित होता है जैसे यौन संबंध से गर्भवती महिला से उसके बच्चे गर्भ के दौरान प्रसूति के समय या स्तनपान कराते समय यह संचारित होता है। फिर भी थैलासीमिया मेजर के रोगी अधिकतर रक्ताधान के द्वारा हेपेटाइटिस B से संक्रमित होते हैं।

निम्नलिखित विषयों में उपयुक्त नीतियाँ अपनाने से हेपेटाइटिस B वायरस के संचरण को रोका जा सकता है।

- (1) रक्त दाताओं का चुनाव तथा परीक्षण
- (2) HBV टीकाकरण और विसंक्रमण
- (3) वार्तिकल (सीधे) संचार अर्थात् संक्रमित माता से उसके नवजात शिशु को होने वाले संचार की रोकथाम।

HBV की प्रकृति विज्ञान

HBC से संक्रमित रोगियों में से 5-10 प्रतिशत रोगी आजीवन संक्रमित रहते हैं अर्थात् वे दीर्घकालिक वाहक बन जाते हैं, इनमें यकृत रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

यदि रोकथाम के उपाय न किए जाएं तो संक्रमित माताओं से जन्म लेने वाले शिशुओं में से 90 प्रतिशत शिशु आजीवन हेपेटाइटिस वायरस के वाहक रहेंगे। हेपेटाइटिस B के दीर्घ कालिक संक्रमण वाले व्यक्तियों में से 25-30 प्रतिशत को प्रगामी यकृत रोग हो जाता है। हेपेटाइटिस B से संक्रमित थैलासीमिया मेजर के रोगियों में गम्भीर यकृत-रोग हो जाने की संभावना बढ़ जाती है।

ऐसे रोगियों का प्रतिशत प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न होता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ रोकथाम के उपायों जैसे कि HBV टीकाकरण, दाता का परीक्षण और चुनाव का कार्यान्वयन कैसे हुआ है और सबसे महत्वपूर्ण है HBC की स्थानीय व्यापकता प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार विश्वभर में थैलासीमिया मेजर के रोगियों में से 2-35 प्रतिशत रोगी हेपेटाइटिस B के वाहक हैं और 20 प्रतिशत- 90 प्रतिशत रोगियों के परीक्षण प्रमाण हैं कि वे अपने जीवन में कभी न कभी इस वायरस से संक्रमित रहे हैं (पूर्व-संक्रमण)। विकसित देशों में हेपेटाइटिस B के वाहक रोगी बड़ी आयु के हैं-वे टीकाकरण और रक्त परीक्षणों के विषय में नीतियाँ बनाए जाने और उनमें सुधार किए जाने से पहले ही संक्रमित हो चुके थे। तथापि विकासशील देशों से प्रत्येक आयु वर्ग के रोगी वायरस से संक्रमित पाए जा रहे हैं। थैलासीमिया मेजर के निदान की पुष्टि होने और रक्ताधान आरंभ किए जाने से पूर्व रोगी में HBV की स्थिति का पता लगाने

के लिए उसका परीक्षण किया जाना चाहिए अर्थात् क्या वह वायरस का दीर्घकालिक वाहक है या पहले कभी हेपेटाइटिस B से संक्रमित रह चुका है। जो रोगी न तो वाहक है और न कभी संक्रमित रहे हैं उन्हें उनकी आयु पर ध्यान दिए बिना इस वायरस के लिए टीका लगाया जाना चाहिए। थैलासीमिया मेजर के सभी रोगियों का HBV के लिए प्रतिवर्ष परीक्षण किया जाता है। इन परीक्षणों में सरफेस एंटीजन (HBS A₂), HBV के प्रति एंटीबॉडी (Anti-HBS), ई-एंटीबॉडी (Anti HBe) और लोर कके प्रति एंटी बॉडी (Anti HBe) सम्मिलित हैं। उपचार आरंभ करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय का पता लगाने के लिए क्रॉनिक HBV वाहकों का जल्दी-जल्दी परीक्षण करने की आवश्यकता पड़ सकती है। हेपेटाइटिस B से संक्रमित थैलासीमिया मेजर के रोगियों में लौह की अधिकता एक अतिरिक्त कारक है जिसको जिगर खराब होने में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है अतः एक प्रभावी आयरन वीलेटन चिकित्सा बहुत आवश्यक होती है।

दीर्घकालिक HBV संक्रमण की चिकित्सा दीर्घकालिक हेपेटाइटिस B की चिकित्सा का उद्देश्य HBV को घटाना और घटाने जाना है और संक्रमण के परिणामों को रोकना है। हाल के कुछ वर्षों में HBV संक्रमण की चिकित्सा में काफी सुधार हुआ है। सामान्यतः प्रयुक्त दवाओं और प्रतिविषाणुक औषधियों में अल्फा-रिक्तोम्बनेट इंटरफेरॉन द्वारा परम्परागत उपचार सम्मिलित हैं जो काफी लम्बे समय से प्रचलित है।

अल्फा-इंटरफेरॉन एक रसायन है जो प्रतिरक्षा प्रणालीको नियंत्रित करने की क्षमता रखता है। यह देखा गया है कि दीर्घकालिक सक्रिय हेपेटाइटिस के 25-40 प्रतिशत रोगियों में यह संक्रमण को दूर करने की शुरुआत करता। अभी हाल ही में विकसित एक प्रतिविषाणु लेमिवुडिन है। लेमिवुडिन (epivir[™]-HBV, 3 TC) के अकेले प्रयोग या इंटरफेरॉन के साथ इसके प्रयोग से दीर्घकालिक HBV के उपचार के एक अंश पहले वर्ष में 14-32 प्रतिशत और 4 वर्ष बाद 67 प्रतिशत रोगियों में प्रतिरोध का विकसित होना एक बड़ी कमी माना जा रहा है। एडिफोविर डिपिवोक्सिल मुँह से ली जाने वाली एक नई दवा है जो CHB के उपचार के लिए बाजार में उपलब्ध है, यह वायरस को दबाने में लेमिवुडिन जितनी ही प्रभावी सिद्ध हुई है और इसने प्रतिरोध की चिन्ता को समाप्त कर दिया है। अन्य आशाजनक औषधियाँ हैं (1) इंटरफेरॉन का एक नया प्रकार पेगिलेटिंग-इंटरफेरॉन जिसे बेहतर प्रभाव के लिए विकसित किया गया है और (2) एंटीकेविर ये दोनों औषधियाँ HBV संक्रमण के उपचार के लिए अभी परीक्षणाधीन हैं। रोग का उपचार कब आरम्भ किया जाए इसका निर्णय और किसी एक औषधि या औषधियों के मेल का चुनाव, उपचार कर रहे चिकित्सक को हेपेटोलोजिस्ट (यकृत-रोग विशेषज्ञ) के निकट सहयोग से करना चाहिए, HEPATOLOGIST (यकृत-रोग विशेषज्ञ) जिगर के रोगों के उपचार के विशेषज्ञ होते हैं। कुल मिलाकर जहाँ संसाधन न और उपलब्धता अनुकूल है वहाँ अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त दिशा निर्देशों के अनुसार इन औषधियों के प्रयोग से दीर्घकालिक सुधार हुआ है और सिरोसिस (कम्पनसेटिड और डिक्म्पन्सेटिड) तथा हेपेटोसेल्यूलर कैंसर (HCC) जैसे गम्भीर जिगर के रोगों की संभावना में काफी कमी आई है।

हेपेटाइटिस (HCV)

इस संक्रमण से प्रभावित 80 प्रतिशत से अधिक रोगियों में HCV जीवन भर के लिए दीर्घकालिक संक्रमणों का कारण बन जाता है यद्यपि HCV हेपेटाइटिस B की तरह रक्ताधान के अतिरिक्त अन्य तरीकों से आसानी से संचारित नहीं होता। HCV के लिए अभी तक कोई प्रभावी वेक्सीन उपलब्ध नहीं है। यद्यपि ऐसे प्रयोगशाला परीक्षण अवश्य हैं जिनसे रक्त में इस वायरस की उपस्थिति को ठीक से पहचाना जा सकता है। इसलिए HCV के संचार को रोकने और संक्रमण की दर को कम करने का सबसे प्रभावी उपाय यह सुनिश्चित करना कि दाता के रक्त का परीक्षण ध्यानपूर्वक किया जाए।

HCV का उद्भवनकाल (Incubation priod) अन्य विषाणुओं की अपेक्षा लम्बा होता है इसका अर्थ यह है कि एक बार रक्त में प्रवेश कर जाने के बाद यह विषाणु काफी लम्बी अवधि तक संक्रामक रह सकता है। रक्त में यह ऐसी अवस्था में रहता है कि अधि कतर ब्लड बैंकों में किए जाने वाले सामान्य (एंटीबॉडी) परीक्षणों से कुछ समय तक इसकी पहचान ही नहीं हो पाती और उसी अवधि के दौरान यह रक्त कि रोगी को दिया जा सकता है जिससे वह रोगी संक्रमित हो सकता है।

इस संक्रामक अवधि (विंडोफेज़ या इम्यूनोसाइलेंट पीरियड) को जितना हो सके कम करने के प्रयास में HCV के परीक्षण पर काफी ध्यान दिया जा रहा है ताकि रक्त द्वारा HCV के संचार को कम से कम किया जा सके।

HCV का प्रकृति विज्ञान (देखें 6b)

HCV के दीर्घकालिक वाहकों में से लगभग 20 प्रतिशत को मंद यकृत रोग (फाइब्रोसिस) हो जाता है इनमें से 20 प्रतिशत को अधिक गम्भीर यकृत रोग जैसे कि सिरोसिस और हेपेटोसिक्ल्यूलर कैंसर हो सकता है। दीर्घकालिक हेपेटाइटिस (CHC) के लगभग 10-20 प्रतिशत रोगियों में 10 वर्षों के अन्दर सिरोसिस हो जाती है। हेपेटाइटिस C संक्रमण यकृत-प्रत्यारोपण का सबसे सामान्य कारण है।

हेपेटाइटिस C के छह मुख्य प्रकार हैं (जीनोटाइप) (देखें 6C) इनमें से प्रत्येक का भिन्न भौगोलिक विस्तार और नैदानिक महत्त्व है। विश्व भर में थैलासीमिया मेजर के रोगियों में 10-80 प्रतिशत रोगी इस वायरस से संक्रमित है और HCV संक्रमण इन रोगियों में गम्भीर यकृत-रोग का एक मुख्य कारण है। हेपेटाइटिस B की तरह जिन रोगियों का आयरन कीलेटन या तो होता ही नहीं या ठीक प्रकार से नहीं

होता उनमें लौह की अधिकता यकृत ऐसा एक अन्य कारक है जो यकृत की क्षति के लिए काफी हद तक उत्तरदायी हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि HCV से संक्रमित थैलासीमिया मेजर के सभी रोगी ठीक प्रकार से आयरन कीलेटन उपचार लें और वर्ष में एक बार हेपेटाइटिस C के लिए विशेष प्रयोगशाला परीक्षण करवाएं (देखें 6d)। HCV और HBV का एक साथ होना थैलासीमिया मेजर के रोगियों एक सामान्य बात है क्योंकि ये दोनों ही वायरस रक्त के माध्यम से सरलता से संचालित हो जाते हैं। HCV और HBV का एक साथ होना गम्भीर यकृत रोग के अधिक जल्दी से बढ़ने के लिए काफी हद तक उत्तरदायी हो सकता है।

दीर्घकालिक हेपेटाइटिस C (CHC) का उपचार प्रारम्भ में HCV संक्रमण में परम्परागत रिकम्बिनेन्ट a- इंटरफेरॉन एकल चिकित्सा का प्रयोग किया जाता था। हालांकि इसके दीर्घकालीन चिकित्सा परिणामों की दर काफी कम (10-25 प्रतिशत) थी। हाल के कुछ वर्षों में CHC की चिकित्सा में काफी सुधार आया है। आजकल जिस चिकित्सा की सलाह दी जाती है उसमें पारम्परिक रिकम्बिनेन्ट a- इंटरफेरॉन के साथ रिबविरिन का प्रयोग किया जाता है, यह प्रतिविषाणु (एंटीवायरल) गुणों वाली मुंह द्वारा ली जाने वाली औषधि है। हालांकि रिबाविरिन चिकित्सा के साथ ही मोलिसिस अर्थात् लाल रक्त कोशिकाओं का नष्ट होना जुड़ा हुआ है क्योंकि यह लाल रक्त कोशिकाओं के एक महत्वपूर्ण अवयव ATP (एडिनोसाइन ट्राइ फास्फेट) में काफी कमी कर देती है, ATP लाल रक्त कोशिकाओं के बने रहने के लिए उत्तरदायी होता है। रिबाविरिन ले रहे थैलासीमिया मेजर के रोगियों में होमोलिसिस कहीं अधिक स्पष्ट हो सकता है और इन्हें अधिक जल्दी-जल्दी रक्ताधान की आवश्यकता पड़ सकती है (लगभग 30 प्रतिशत अधिक)। फिर इसके कारण अतिरिक्त लौह को निकालने के लिए अधिक सधन कीलेटन चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। अभी हाल ही में इंटरफेरॉन की काफी सुधरी हुई किस्म पेगिलेटेड इंटरफेरॉन प्रयोग की जा रही है यह अकेले ही या रिबाविरिन के साथ प्रयोग की जाती है इससे CHC के रोगियों में चिकित्सा परिणामों की दर में काफी सुधार हुआ है और चिकित्सा के अन्य विकल्प उपलब्ध हुए हैं।

चिकित्सा का प्रकार और अवधि पहचाने गए हेपेटाइटिस C के वायरस के प्रकार (जीनोटाइप) पर निर्भर होता है, आइप-1 की चिकित्सा के विषय में निर्णय हेपेटोलोजिस्ट के परामर्श से लेना चाहिए। नई चिकित्सा विधियों से सफलता की दर में वृद्धि हुई है, a- रिकम्बिनेट इंटरफेरॉन के प्रयोग से 10-25 प्रतिशत जैसी कम दर, टाइप-1 के अतिरिक्त अन्य प्रवाहों में 60 प्रतिशत से अधिक हो गई है और टाइप-1 के लिए दर 48 प्रतिशत तक आ गई है। HBV और HCV दोनों ही प्रकार के संक्रमणों के लिए प्रतिविषाणु (एंटी वायरल) चिकित्सा काफी खर्चीली है और कई विकासशील देशों में इसकी उपलब्धता दुर्भाग्यवश अत्यन्त सीमित है। HCV और HBV के संचार से संबंधित कुछ सामान्य सावधानियाँ हैं—टूथ-ब्रश, रेज़र तथा व्यक्तिगत उपयोग की अन्य धार-दार वस्तुओं के साझे प्रयोग से बचना। HBC हेपेटाइटिस C से अधिक संक्रामक है (यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को बड़ी आसानी से लग जाती है) फिर भी वायरस के विरुद्ध उपयुक्त टीकाकरण से इसके संचार की संभावना को बिल्कुल समाप्त किया जा सकता है।

मानव-प्रतिरक्षाहीनता विषाणु (HIV)

HIV संक्रामक सूक्ष्म जीव है जिससे AIDS एड्स होता है। HIV रेट्रोवायरस कुल का एक वायरस है इनमें कुछ विशेष जैविक विशिष्टाएँ होती हैं जो इनके संवर्धन के ढंग और इनके द्वारा आक्रमित शरीर की कोशिकाओं के अन्दर इनके व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। श्वेत रक्त कोशिकाएँ जिन्हें लिम्फोसाइट (CD4) कहा जाता है शरीर की कोशिकाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कोशिकाएँ हैं जो वायरस के साथ सम्बद्ध हो सकती हैं (देखें 6f)। यह वायरस एक तंत्र के प्रयोग से इन कोशिकाओं के अन्दर प्रवेश करता है, इस तंत्र के द्वारा यह कोशिका के DNA का एक भाग बन जाता है और स्वयं को संक्रमित व्यक्ति के शरीर में स्थायी रूप से स्थापित कर लेता है और लिम्फोसाइट कोशिकाओं में संवर्धित होता है तथा कोशिकाओं को नष्ट कर देता है (देखें 6f)। शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली में लिम्फोसाइट की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किन्तु यदि इन पर एक बार रेट्रोवायरस का आक्रमण हो जाए तो इनकी संक्रमण शरीर को सुरक्षा-प्रदान करने की क्षमता नष्ट हो जाती है। उपचार के अभाव में 7-11 वर्षों में यह रोग गम्भीर रूप लेता है। हालांकि रोग-विषयक लक्षण और तीव्रता काफी पहले ही प्रकट हो सकते हैं और रोग कब गम्भीर हो जाएगा इसकी कोई निश्चित समय नहीं है। प्रारंभिक अवस्था में संक्रमित व्यक्ति में इसके प्रयोगशाला या नैदानिक लक्षण नहीं मिलते (इस अवस्था को अलक्षणी अवस्था कहते हैं) अथवा प्रयोगशाला परीक्षणों के परिणाम संक्रमित कोशिकाओं की गम्भीर क्षति और वायरस की संख्या में वृद्धि की तेज दर दिखाएँ तो इसका अर्थ है कि रोग अधि क गम्भीर अवस्था में पहुँच चुका है और व्यक्ति को एड्स हो गया है।

एड्स के जिन रोगियों का उपचार नहीं होता उनमें मृत्यु का प्रमुख कारण संक्रमण होता है। संक्रमण, प्रभावी प्रतिरक्षा प्रणालीकी अनुपस्थिति में घातक हो जाते हैं। एड्स के उन रोगियों में जिनका उपचार नहीं होता। प्रायः कोई भी रोगाणु गंभीर से घातक संक्रमण तक उत्पन्न कर देता है जिनमें न्यूमोसिस्टिक केरिनि जोकि ऐसे रोगियों में मृत्यु का सबसे आम कारण है। एचआईवी HIV एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में रक्त के माध्यम से, असुरक्षित यौन संबंधों से या एक संक्रमित माता से उसके बच्चे को संचारित होता है (इसे वर्टिकल रूट कहते हैं)। HBC और HCV की तरह रक्त के माध्यम से HIV के संचरण को रोकथम के लिए रक्ताधान से पूर्व दाता के रक्त का सावधानीपूर्वक प्रयोगशाला परीक्षण किया जाना और उच्चस्तर की रक्ताधान सुविधा उपलब्ध होना आवश्यक है। HIV संक्रमण का किसी अन्य रास्ते से संचरण काफी हद तक कम किया जा सकता है। यदि अनेक व्यक्तियों से यौन संबंध या असुरक्षित यौन संबंध से बचा जाए। HCV की तरह HIV के लिए भी अभी तक कोई सुरक्षित ओर प्रभावी टीका (वेक्सीन) उपलब्ध नहीं है।

बहुत सी दवाएँ विषाणु के कोशिका में प्रवेश करने और कोशिकाओं से बाहर निकलने की विभिन्न अवस्थाओं में या इससे संक्रमित कोशिकाओं में इसके संवर्धन (अपने जैसे अन्य वायरस बनाने) में बाधा उत्पन्न करती हैं। इन्हें एंटी रेट्रोवायरल (प्रति रेट्रो विषाणु) कहा जाता है। (देखें 6g), से इनका प्रयोग किया जा रहा है। इस क्षेत्र में कार्य कर रहे विशेषज्ञों द्वारा नियमित रूप से अप-डेट किए जा रहे अंतर्राष्ट्रीय दिशा-निर्देशों के अनुसार इनमें से दो, तीन या अधिक दवाओं को एक साथ लिया जाता है। इन दवाओं ने इस रोग के प्रकृति-विज्ञान को यथार्थ में बदलकर रख दिया है। इन औषधियों के उपलब्ध हो जाने के बाद से HIV से संक्रमित रोगियों के जीवित रहने और उनके जीवन स्तर में आश्चर्यजनक सुधार हुआ है। एंटी रेट्रोवायरल दवाओं के प्रयोग से 80 प्रतिशत से अधिक मामलों में वायरस के सीधे संचरण अर्थात् संक्रमित माता से उसके भ्रूण और/अथवा शिशु में होने वाले संचरण की रोकथाम में सफलता मिली है। हालाँकि HCV और HBV की चिकित्सा की तरह HIV की चिकित्सा में प्रयोग होने वाली दवाएँ भी अत्यधिक महंगी हैं। अधिकतर संक्रमित रोगी गरीब देशों में रहते हैं जहाँ निरन्तर प्रयासों के बावजूद इस प्रकार की दवाएँ बहुत कम उपलब्ध हैं या फिर आमतौर पर बेहद महंगी हैं। हालाँकि अभी तक उपलब्ध आँकड़ों से यह पता चलता है कि थैलासीमिया मेजर के रोगियों में HIV संक्रमण की दर कम है पर अन्य देशों से आँकड़े प्राप्त होने पर यह संख्या काफी अधिक हो सकती है। बहुत से अन्य प्रकार के सूक्ष्म-जीव रक्त के माध्यम से संचारित हो सकते हैं। हालाँकि यह हो सकता है कि इनसे दीर्घकालिक संक्रमण न हो पर थैलासीमिया मेजर या अन्य हीमोलिटिक एनीमिया विशेषतः जिनमें प्रतिरक्षा प्रणाली की सक्रियता काफी कम हो गई हो जैसे कि प्रत्यारोपण करवाने के बाद ये नैदानिक रूप से महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

अन्य विषाणु (वायरल)

मानव पैरोवायरस B-19

मानव पैरोवायरस B-19 (HPV B-19) एक अन्य वायरस है जो रक्त के माध्यम से संचारित हो सकता है (हालाँकि यह वायरस के संचरण का मुख्य तरीका नहीं है)।

थैलासीमिया या अन्य हीमोलिटिक एनीमिया जैसे कि सिकल-सेल एनीमिया के रोगियों में इस वायरस का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि यह अस्थायी रूप से लाल रक्त कोशिकाओं का उत्पादन रोक देता है, जिसे ट्रान्शिफ़्ट एप्लास्टिक क्राइसिस कहते हैं। HPV B-19 के संक्रमण की तीव्र अवस्था का विशेष लक्षण है हीमोग्लोबिन के स्तर में अकस्मात् कभी आ जाना और वेरिफेरल लाल कोशिकाओं की पूर्ववर्ती रेटिक्युलोसाइट कोशिकाओं का लुप्त हो जाना।

जिन मामलों में प्रायः संक्रमण का शीघ्रता से निदान कर लिया जाता है-सम्पूर्ण रक्त चढ़ाकर रोगी का उपचार किया जा सकता है। सम्पूर्ण रक्त में सामान्यतः वायरस का प्रतिरोध करने के लिए पर्याप्त मात्रा में एंटीबॉडीज होती हैं। हालाँकि उन रोगियों में जिनकी प्रतिरक्षा प्रणाली की सक्रियता में कमी आ गई हो अर्थात् जिनका अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण हुआ हो या जो HIV से संक्रमित हों-HPV B-19 का संक्रमण हो जाने पर अधिक गम्भीर और कभी-कभी दीर्घकालिक नैदानिक जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

ह्यूमैन साइटोमेगालोवायरस

निरुद्ध प्रतिरक्षा प्रणाली वाले रोगियों के लिए और भी अधिक खतरनाक वायरस है ह्यूमैन साइटोमेगालोवायरस (CMV)। यह वायरस प्रत्यारोपित रोगियों में गम्भीर संक्रमण उत्पन्न कर देता है और यदि शीघ्रता से इसका निदान और उपचार न किया जाए तो प्रायः घातक सिद्ध हो सकता है। इस वायरस का प्रमुख लक्षण यह है कि यह जिन कोशिकाओं को संक्रमित करता है (मुख्यतः श्वेत रक्त कोशिकाएँ) उनमें स्थायी रूप से रह जाता है और अचानक सक्रिय होकर सेकन्डरी या पुनरावर्ती संक्रमण उत्पन्न कर देता है। इसलिए यह आवश्यक है कि थैलासीमिया मेजर के रोगियों को विशेषतः उन रोगियों को जिनका अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण करना पड़ सकता है या जिनका अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण (BMT) हो चुका है। फिल्टर्ड रक्त मिले जिसमें से यथासंभव श्वेत रक्त कोशिकाएँ और उनके साथ संबद्ध रोगाणु जिसमें CMV भी सम्मिलित है, निकाल दिए गए हों।

मलेरिया और चागा रोग

रक्ताधान के बाद होने वाले मलेरिया और चागा रोग के विषय में 50 वर्षों से अधिक समय से जानकारी है। प्लैजमोडियम स्पीशीज और ट्रिपोनोसोमा क्रूजी क्रमशः मलेरिया और चागा रोग उत्पन्न करने वाले कारक हैं। रेफ्रिजेरेटिड रक्त अवयवों और यहाँ तक कि जमे हुए प्लैजमा में भी कम से कम दो सप्ताह तक जीवित रह सकते हैं। जिन देशों में ये रोग स्थानिक-रोग हैं। वहाँ पर्यटकों का जाना और उन देशों से जहाँ ये रोग स्थानिक रोग नहीं है जनसंख्या के बढ़ते हुए प्रवास के कारण मलेरिया और चागा रोग के संचार में वृद्धि हो सकती है। यह गम्भीर चिंता का विषय है और इसके परिणामस्वरूप विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूरोपीय काउंसिल, अमरीकी स्वास्थ्य प्राधिकरणों और राष्ट्रीय रक्ताधान सेवाओं में संयुक्त रूप से मानदण्ड निश्चित किए हैं जिनका उद्देश्य रक्ताधान के बाद होने वाले मलेरिया और चागा रोग की रोकथाम है इसमें रक्तदाताओं का स्थगन और/अथवा परीक्षण भी सम्मिलित है।

नए रोगाणु

तथाकथित नए रोगाणु जिनकी खोज 1995-98 के मध्य हुई है। उनमें हेपेटाइटिस B और C के अतिरिक्त अन्य हेपेटाइटिस वायरस है—हेपेटाइटिस G (HGV or GBV-C), SEN-V और TT वायरस सम्मिलित हैं। यद्यपि रक्ताधान के माध्यम से इन रोगाणुओं के संचरण के पर्याप्त लिखित प्रमाण उपलब्ध हैं फिर भी यकृत-रोग उत्पन्न करने में इनकी भूमिका अभी स्पष्ट नहीं है।

परिचित रोगाणु-अपरिचित चिंताएँ

क्रूजफ़ील्ड जेकब रोग (CJD) और इसका नया रूप-भेद (VCJD) बोवाइन स्पंजीफार्म एनसेफलाइटिस (BSE) पशुओं में पाए जाने वाले एक रोग का मानव रूप-भेद है। यह स्नायुतन्त्र को प्रभावित करने वाला एक घातक रोग है। यह रोग वास्तविक वायरस नहीं बल्कि प्रिऑन प्रोटीन के कारण होता है। हालाँकि संरचना की दृष्टि से किसी अन्य संक्रमण कारक (माइलोब, बैक्टीरिया और पैरासाइट) के साथ इसका वर्गीकरण मुश्किल है। इस बात की जानकारी है कि कुछ अस्पष्ट स्थितियों में इस वायरस का मानव रूप-भेद प्रिऑन प्रोटीन को एक हानिकारक अभिकारक में रूपान्तरित कर देता है जो धीरे-धीरे बढ़ने वाले स्नायविक घातक रोग से संबंधित है। हालाँकि इस रोग के विषय में वर्षों से जानकारी है पर CJD और इसके नए रूप-भेद का महत्व 1990 के दशक के मध्य में उभरकर सामने आया जब पोस्टमार्टम परीक्षणों के दौरान मुख्य रूप से ब्रिटेन में इस प्रकार के केसों की एक बाढ़ सी देखी गई पर बाद में कुछ अन्य देशों में भी ऐसे कुछ केस देखे गए। दिसम्बर 2001 तक ब्रिटेन में 113 केस, फ्रांस में 4 और आयरलैंड गणराज्य तथा हाँगकाँग में एक-एक केस देखा गया। CJD के नए रूप-भेद के वे सब मामले जिनका अब तक विवरण उपलब्ध है। रोगियों द्वारा संक्रमित पशु से प्राप्त खाद्य पदार्थों के सेवन का परिणाम माने जाते हैं। मनुष्यों से उत्पन्न हार्मोन (ग्रोथ हार्मोन) लेने वाले या कार्निआ प्रतयारोपण कराने वाले और ड्यूरामेटर प्राप्त करने वाले रोगियों में भी इसके संचार का विवरण मिलता है। न्यूरोसर्जरी और ठीक प्रकार से विसंक्रमित न किए गए उपकरणों से EEG किए जाने के बाद भी इनके संचार का विवरण मिला है। रक्ताधान के माध्यम से इसके संक्रमण का कोई विवरण नहीं मिलता। तथापि इस रोग की गम्भीरता और लसीका ऊतकों में प्रिऑन प्रोटीन की उपस्थिति के कारण कई पश्चिमी देशों ने विशेषतः ब्रिटेन ने रक्त के माध्यम से इसके संचरण की रोकथाम के उद्देश्य से बनाई नीतियों में काफी/संसाधन लगा दिए हैं।

लागू की गई नीतियों में से एक नीति है यूनिवर्सल किल्ट्रेशन अर्थात् प्राप्त किए गए पूरे रक्त का फिल्ट्रेशन, जिससे रक्त में से अधिकतम श्वेत रक्त कोशिकाएँ (लिम्फोसाइट) निकल जाती है।

रक्त की निरापदता

रक्ताधान के माध्यम से संक्रामक सूक्ष्म-जीवों के संचरण की रोकथाम पर अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों को केन्द्रित किया गया है। रक्त को निरापद करने में निम्नलिखित कारकों का योगदान है

- (1) उपयुक्त दाताओं द्वारा नियमित रूप से स्वैच्छिक और बिना भुगतान के रक्तदान को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से नीतियाँ बनाना।
- (2) उच्च-स्तरीय रक्ताधान सुविधाएँ जिनमें HIV, HBV, सिफलिस और स्थानीय रूप से मिलने वाले किसी अन्य रोगाणु की उपस्थिति के लिए दाता के रक्त का अनिवार्य प्रयोगशाला परीक्षण सम्मिलित हो।
- (3) अन्य जन-स्वास्थ्य उपायों जैसे कि टीकाकरण और विसंक्रमण प्रक्रियाओं की व्यवस्था करना। हाल के कुछ वर्षों में औद्योगिक देशों में रक्त परीक्षण के लिए एक विशिष्टीकृत DNA प्रयोगशाला-प्रविधि/तकनीक का उपयोग किया गया है जिसे न्यूक्लीइक एसिड टेस्टिंग (NAT) कहा जाता है, इसके द्वारा नैदानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण विषाणुओं के संचरण की संभावना में और भी अधिक कमी आ गई है। हालाँकि इसकी लागत बहुत अधिक है। जीवाण्विक संदूषण/बैक्टीरिया द्वारा दूषित होना वायरस के अतिरिक्त अन्य सूक्ष्म जीव जैसे कि बैक्टीरिया और परजीवी भी रक्त में जीवित रह सकते हैं और संवर्धन कर सकते हैं और इस प्रकार रक्ताधान के माध्यम से रोगियों को संक्रमित कर सकते हैं। वास्तव में बैक्टीरिया द्वारा रक्त के संदूषण की दर वायरस की अपेक्षा 50-50 गुणा अधिक है। ये संदूषण प्रायः साधारण तरीके से हो जाते हैं और इनसे आसानी से बचा जा सकता है। उदाहरण के लिए—संदूषण का एक सामान्य स्रोत है। स्वच्छता का अभाव, जब रक्तदान करने वाले दाता की त्वचा सूई प्रविष्ट करने से पहले ठीक प्रकार से विसंक्रमित नहीं की जाती। जब सूई त्वचा को छेदती है तो त्वचा की सतह से बैक्टीरिया सूई के साथ लिए गए रक्त में आ जाते हैं।

रक्त की सुरक्षा की नई विधियाँ

सभी प्रकार के रोगाणुओं द्वारा संदूषण की संभावना को और भी कम करने के उद्देश्य से किए जा रहे प्रयास में नई तकनीकों का विकास किया गया है जिनका लक्ष्य दिए गए रक्त यूनिट में रोगाणुओं के DNA को नष्ट करना है। इस विधि को रोगाणु-निष्क्रियण कहा जाता है। रक्त की सुरक्षा का यह पहला अग्रसक्रिय उपाय है क्योंकि रक्त की यूनिट में रोगाणुओं की उपस्थिति का पता हो या न हो ये उन्हें निष्क्रिय कर देता है। अनुसंधान और रोग-विषयक अध्ययन काफी आगे की अवस्था में पहुँच चुके हैं, एक तकनीक यूरोप में स्वीकृत हो चुकी है और प्लेटलेट्स के लिए उसको व्यावसायिक से उपलब्ध कराया जा रहा है। इनका अंतिम लक्ष्य इस तकनीक को लाल रक्त कोशिकाओं सहित रक्त के अन्य अवयवों के लिए भी प्रयोग करना है।

विकासशील देशों में रक्त की उपलब्धता और निरापदता

कई विकासशील देशों में रक्ताधान से संबंधित खतरे विकसित देशों की अपेक्षा बहुत ज्यादा हैं। अधिकतर विकासशील देशों में रक्त की पर्याप्तता (अर्थात् उपलब्धता) एक महत्वपूर्ण समस्या है जबकि यूरोप और अमेरिका में दाता के चुनाव की नीतियाँ और टीकाकरण कार्यक्रमों सहित रक्ताधान की सुविधाएँ सिफारिश किए गए मानदण्डों के अनुरूप नहीं हैं।

आर्थिक दबाव, प्राथमिकताओं की होड़ और राजनीतिक अस्थिरता से रक्त की निरापदता के उच्च मानदण्डों को लागू करने की प्रक्रिया मंद पड़ सकती है। WHO की रक्त सुरक्षा इकाई द्वारा एकत्र आँकड़ों के अनुसार, विश्व की जनसंख्या का 80 प्रतिशत भाग विकासशील देशों में रहता है लेकिन विश्व की कुल वार्षिक रक्त-आपूर्ति, 7.5 करोड़ यूनिट का 40 प्रतिशत से भी कम रक्त उन्हें प्राप्त होता है।

अनुमानतः विकसित देशों में एकत्र रक्त आपूर्ति का मात्र 16 प्रतिशत भाग स्वैच्छिक रूप से, बिना भुगतान के, कम जोखिम वाले रक्तदाताओं द्वारा दिया जाता है जबकि 43 प्रतिशत रक्त का पूरी तरह परीक्षण नहीं होता। जिसके परिणामस्वरूप कई विकासशील देशों में HIV, HBV और HCV का रक्ताधान के माध्यम से संक्रमण होने की संभावना रहती है और कुछ देशों में इसकी संभावना अधिक होती है। सभी अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठनों और प्राधिकरणों द्वारा और अधिक सम्मिलित प्रयासों की आवश्यकता ताकि इन देशों में रक्त की निरापदता और उपलब्धता की स्थिति को सुधारा जा सके।

अध्याय 7

थैलासीमिया इन्टरमीडिया तथा अन्य थैलासीमिया

थैलासीमिया इन्टरमीडिया एक रोग-दशा है जिसमें रोगी माता और पिता दोनों ही से रोग-ग्रस्त B-जीन वंशानुगत रूप में प्राप्त करता है (अर्थात् B-थैलासीमिया के लिए ये समयुग्मज होते हैं) किन्तु इन रोगियों में थैलासीमिया मेजर के रोगियों की अपेक्षा रोग के लक्षण कुछ मध्यम होते हैं। थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में हीमोग्लोबिन का स्तर 6-9 ग्राम/डे.ली. रहता है तथा इन्हें नियमित रक्ताधान की आवश्यकता नहीं पड़ती।

तथापि इस रोग पर किए गए महत्त्वपूर्ण अनुसंधानों से यह सिद्ध हो गया है कि थैलासीमिया इन्टरमीडिया रोग के वास्तव में अलग-अलग प्रकार के बहुत से लक्षण होते हैं जिनमें से से कुछ तीव्र भी हो सकते हैं। सबसे गम्भीर मामलों में 2-6 वर्ष आयु के रोगियों के प्रयोगशाला परिणामों और डॉक्टरों की परीक्षाओं में इस रोग के प्रमाण मिल सकते हैं। यद्यपि इन रोगियों में वृद्धि और शारीरिक विकास की दर सामान्य से कम होती है फिर भी नियमित रक्ताधान के बिना ये रोगी एक अच्छा जीवन व्यतीत कर सकते हैं जबकि B-थैलासीमिया मेजर के रोगियों को इसकी आवश्यकता होती है।

कुछ कम गंभीर मामलों में हो सकता है रोगी के वयस्क होने तक कोई लक्षण दिखाई न दे, केवल थोड़ी रक्ताल्पता (8-10 g/dL) हो और शायद ही कभी रक्ताधान की आवश्यकता पड़े। लाल रक्त कोशिकाओं के तेजी से टूटने और तिल्ली में इकट्ठे हो जाने से तिल्ली का आकार बढ़ सकता है जैसा कि थैलासीमिया मेजर में भी होता और यह कभी कभी थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में अधिक तीव्र रक्ताल्पता का कारण हो सकता है। ऐसे रोगियों में अधिक नियमित रूप से रक्ताधान की आवश्यकता पड़ सकती है। तिल्ली निकाल देने से समस्या का निवारण भी हो सकता है तथापि यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण निर्णय है। इसे विशेषज्ञ की सलाह से ही लेना चाहिए। यह निर्णय लेते समय रक्ताल्पता से राहत के साथ रोगी के स्वास्थ्य के अन्य पहलुओं का भी ध्यान रखना चाहिए जैसे कि संक्रमण की संभावना।

जैसा कि अध्याय-2 में वर्णन किया गया है, थैलासीमिया मेजर में रोग के लक्षणों का मुख्य कारण मुक्त ए-शृंखलाएँ होती हैं जो लाल रक्त कोशिकाओं में इकट्ठी हो जाती हैं तथा ए-शृंखलाओं और सामान्य रूप से इनकी जोड़ी की B-शृंखलाओं के बीच असंतुलन उत्पन्न कर देती हैं। अकेली ए-शृंखला लाल रक्त कोशिकाओं के विकास चक्र के लगभग प्रत्येक चरण में बाधा डालती है जिसके कारण तीव्र रक्ताल्पता तथा अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

ऊपर दी गई जानकारी के आधार पर यह आशा करना उचित होगा कि थैलासीमिया के रोगियों में प्रकट होने वाले लक्षण उस स्थिति में कम तीव्र होंगे जहाँ बढ़ी हुए ए-शृंखलाओं की संख्या में कमी करना संभव होगा। आणविक स्तर पर किए गए अनुसंधानों से यह सिद्ध हो गया है कि ऐसी कुछ स्थितियाँ हैं जिनमें यह संभव है। वे स्थितियाँ हैं :

- (1) B⁺ जीन की उपस्थिति, जो B-शृंखलाएँ बनाते हैं हालाँकि इनकी संख्या सामान्य से कम होती है। ये शृंखलाएँ a-शृंखलाएँ के साथ जोड़ी बना लेती हैं और इस प्रकार मुक्त a-शृंखलाओं की संख्या में कमी आ जाती है। उत्परिवर्तित B-जीन के अत्यन्त अल्प चिकित्सीय परिणाम होते हैं, इन्हें B⁺⁺ के रूप में दर्शाया जाता है।
- (2) a-शृंखलाओं के संश्लेषण के लिए उत्तरदायी जीन में विकृति-इससे a-शृंखलाओं की संख्या में कमी आ जाती है और इस प्रकार a और B-शृंखलाओं की संख्या के संतुलन में सुधार हो जाता है।
- (3) y-शृंखलाओं के उत्पादन के लिए उत्तरदायी y-जीन की सक्रियता के स्तर में वृद्धि। y-शृंखलाएँ a-शृंखलाओं को भ्रूण के हीमोग्लोबिन (a₂y₂) के उत्पादन के लिए संबद्ध कर सकती हैं। इस प्रकार हानिकारक मुक्त a-शृंखलाओं की संख्या में कमी कर देती हैं। जो स्थितियाँ y-शृंखला के उत्पादन में सहायक हो सकती हैं वे हैं : aB-थैलासीमिया, भ्रूण हीमोग्लोबिन की आनुवंशिक अवस्थिति (HPFH) और y-जीन जिसे XmnL कहते हैं उसमें एक विशेष स्थिति पर बदलाव। ऊपर दी गई जानकारी से यह पता चलता है कि रोगी के DNA में किस प्रकार की क्षति है। इसकी ठीक-ठीक जानकारी से चिकित्सा-कर्मियों रोगी की दशा के विषय में अपने ज्ञान को बहुत बढ़ा सकते हैं। इससे किसी रोगी के लिए सबसे उपयुक्त उपचार का निर्धारण करने में (सहायता मिलेगी) आसानी होगी। जहाँ इस प्रकार की परीक्षण की आणविक विधियाँ उपलब्ध हैं, रोगी के उपचार में अत्यन्त मूल्यवान सहयोगी सिद्ध हो रही हैं।

निदान

थैलासीमिया इन्टरमीडिया के निदान में, थैलासीमिया इन्टरमीडिया को थैलासीमिया मेजर से पृथक पहचानने के लिए कुछ क्लीनिकल और प्रयोगशाला परिणामों के प्रमाण की आवश्यकता होती है। यद्यपि मॉलीक्यूलर लेबोरेट्री तकनीकों में इतने प्रभावशाली सुधारों के बावजूद यह सदैव इतना सरल तो क्या संभव भी नहीं होता। फिर भी पृथक्करण के कुछ उपयोगी और साधारण मानदंड नीचे दिए जा रहे हैं।

थैलासीमिया के लक्षण

क्लीनिकल	मेजर शैशव में शुरुआत	इन्टरमीडिया बाद में शुरुआत	माइनर लक्षण-रहित
तिल्ली बढ़ना	++++	+++ - +++++	0-+
पीलिया	+++	+ - +++	0-+
हड्डियों में बदलाव	++++	++ - +++++	0
चेहरे में बदलाव	++ - +++++	0-++++	0
रक्त-संबंधी			
रक्ताल्पता	++++	++ - +++	0-+
लाल रक्त कोशिकाएँ -	-	B -	
माइक्रोसाइटोसिस	+	+	+
NRBE	++ - +++++	+ - +++	0
बायोकेमिकल			
HbF	10-95+%	10-95+%	N या <10%
HbA2	N 1	N या 1	N या (>3-5%)

(Proceedings from a conference, MA Nov. 14, 1996)

निष्कर्षतः थैलासीमिया इन्टरमीडिया के अन्तर्गत समयुग्मज (होमोजायगस) B-थैलासीमिया से कम तीव्रता वाले किन्तु विषम युग्मज (Heterozygous) से अधिक तीव्रता वाले रोग से प्रभावित रोगियों क्लीनिकल और रक्त-परीक्षणों के परिणामों की व्याख्या की जाती है।

थैलासीमिया इन्टरमीडिया की चिकित्सा

थैलासीमिया इन्टरमीडिया में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि रक्ताधान चिकित्सा कब शुरू की जाए। दीर्घकालिक रक्ताल्पता से निम्नलिखित रोग-दशाएँ उत्पन्न होती हैं और निश्चित रूप से रक्ताधान आरम्भ करने का कारण बनती है।

- * विलंबित विकास
- * रोगात्मक अस्थि-भंग
- * हृदय संबंधी जटिलताएँ
- * चेहरे की विकृति
- * शारीरिक सक्रियता में कमी
- * तिल्ली बढ़ना (प्लीहा के आकार में वृद्धि)

किसी भी जटिलता के लक्षणों को शीघ्रता से पहचानने के उद्देश्य से मेडीकल और प्रयोगशाला परीक्षणों के जरिए रोगियों की ध्यानपूर्वक नियंत्रित रूप से मानीटर किया जाना आवश्यक है जैसा कि थैलासीमिया मेजर में किया जाता है।

इसके अतिरिक्त थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में रिएक्शन होने की संभावना पर विशेषतया ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि इन रोगियों में रक्ताधान थैलासीमिया मेजर के रोगियों की अपेक्षा देर से आरम्भ किया जाता है, रक्ताधान देर से आरम्भ किया जाने से प्रायः यह रिएक्शन घटित होते हैं। इसलिए यह अनिवार्य है कि प्रत्येक रक्ताधान से पूर्व रोगी और दाता के रक्त की ध्यानपूर्वक जाँच की जाए ओर उनका मिलान किया जाए। यह जान लेना भी आवश्यक है कि थैलासीमिया इन्टरमीडिया से प्रभावित गर्भवती महिला को रक्ताधान की आवश्यकता पड़ सकती है।

आयरन कीलेटन

थैलासीमिया मेजर की भाँति थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में भी लौह की अधिकता निम्न कारणों से हो सकती है।

- (1) लाल रक्त कोशिकाओं का अप्रभावी उत्पादन
- (2) लाल रक्त कोशिकाओं का नष्ट होना
- (3) आँतों से अवशोषित लौह की मात्रा में वृद्धि

थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में लौह के संचयन पर अपेक्षाया कम अनुसंधान हुए हैं। तथापि एक अध्ययन से यह पता चलता है कि थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगी के शरीर में प्रतिवर्ष 2-5 ग्रा. लौह एकत्र हो जाता है। अर्थात् यह 0.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन दर से एकत्र होता है। यह दर सामान्यतः आहार से होने वाले लौह के अवशोषण की दर से 20-70 प्रतिशत अधिक है। जैसे-जैसे ये रोगी बड़े होते हैं अधिकतर मामलों में 10 वर्ष के बाद थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों को भी लौह-संचयन से संबंधित जटिलाओं का लगभग उतना ही जोखिम होता है जितना कि नियमित रक्ताधान ले रहे थैलासीमिया मेजर के रोगियों को होता है।

थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में आयरन कीलेटन कब आरम्भ किया जाए इसका निर्णय करने में एक कठिनाई है। रोगी के शरीर में लौह की अधिकता की वास्तविक मात्रा का निर्धारण करना। क्योंकि रक्त में फेरिटिन के स्तर से इसका ठीक-ठीक पता नहीं चल पाता जैसा कि थैलासीमिया मेजर में भी देखा गया है। इसीलिए लिवर-बायोप्सी या नई, संवेदनशील अन्य बाहरी विधियों जैसे कि SQUID या MRI के द्वारा आयरन की मात्रा का निर्धारण करना ठीक रहता है।

एक बार जब उपयुक्त आयरन कीलेटन उपचार आरम्भ करने का निर्णय ले लिया जाए तो थैलासीमिया मेजर की भांति डेसफेरिऑक्सामिन के प्रयोग की सलाह दी जाती है हालाँकि थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में इसे त्वचा के नीचे सप्ताह में 2-3 बार से अधिक देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आयरन कीलेटन उपचार ले रहे थैलासीमिया मेजर के रोगियों के लिए निर्धारित फॉलोअप उपचार को थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों के लिए भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगी आँतों से सामान्य से कहीं अधिक लौह का अवशोषण करते हैं इसलिए उन्हें लौह से भरपूर खाद्य पदार्थ (जैसे कि पालक, कलेजी और कुछ फलियाँ) और लौह पूरक भी नहीं लेने चाहिए। भोजन के साथ काली चाय का सेवन आँतों से लौह के अवशोषण को कम करने में सहायक हो सकता है।

थैलासीमिया इन्टरमीडिया में शारीरिक समस्याएँ

हड्डियों में बदलाव : रक्ताल्पता के प्रभाव को कम करने के लिए अधिक लाल रक्त कोशिकाएँ उत्पन्न करने के प्रयास में अस्थि-मज्जा अति सक्रिय हो जाती हैं जिसके कारण हड्डियों में विकृति आ जाती है और वे भंगुर तथा कमजोर/पतली हो जाती हैं, इससे रोगी के विकास में बाधा आती है और उनमें हड्डियाँ टूट जाने की संभावना रहती है। तथापि हड्डियों की गम्भीर समस्याओं पर नियमित रक्ताधान के द्वारा काबू पाया जा सकता है।

(1) **ऑस्टियोपोरोसिस, हड्डियों का भुरभुरापन :** इस गम्भीर अस्थि-मज्जा से बचने के लिए रोगियों को आहार में कैल्शियम की मात्रा बढ़ाने और व्यायाम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। कैल्शियम और विटामिन-डी के कैप्सूल लेना और भी फायदेमंद हो सकता है। धूम्रपान से भी बचना चाहिए। कुछ चिकित्सकों ने बायोफॉस्फोनेट मुख से या रक्त द्वारा दिए जाने के लाभकारी परिणाम बतलाए हैं फिर भी ऑस्टियोपोरोसिस का मुकाबला करने में इसकी भूमिका की पुष्टि अभी नहीं हुई है।

(2) **अस्थि-मज्जा की अतिसक्रियता या प्रसार और फॉलिक एसिड :** शरीर में रक्ताल्पता का मुकाबला करने के प्रयास में अधिक लाल रक्त कोशिकाएँ बनाने के लिए थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में अस्थि-मज्जा को अतिरिक्त कार्य करना पड़ता है, इसके लिए रोगी को कुछ विटामिनों, विशेषतः फॉलिक एसिड की अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता पड़ती है।

थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में फॉलिक एसिड की कमी रक्ताल्पता को और अधिक गंभीर बना सकती है। फॉलिक एसिड प्राकृतिक रूप से कुछ खाद्य पदार्थों जैसे कि मीट, हरी सब्जियों आदि में पाया जाता है। तथापि थोड़ी सी अतिरिक्त मात्रा प्रायः एक गोली प्रतिदिन लेने से रोगी की बढ़ी हुई आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है।

(3) **पित्ताशय की पथरी :** थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में पित्ताशय की पथरी सामान्य लोगों की अपेक्षा अधिक जल्दी-जल्दी बनती हैं। पित्ताशय की पथरी बाइल पिगमेंट से बनती है जो लाल रक्त कोशिकाओं के नष्ट होने से निकलता है। ये पथरियाँ जिगर के समीपवर्ती अंग पित्ताशय में इकट्ठी हो जाती हैं जहाँ ये रुकावट उत्पन्न कर सकती हैं जिसके कारण पेट में दर्द शुरू हो सकता है। अल्ट्रासाउंड जांच से पित्ताशय की पथरी का पता चल सकता है। यदि पेट दर्द बना रहता है तो पित्ताशय को निकालना पड़ सकता है।

(4) **टाँगों के व्रण (अल्सर) :** थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में (शरीर के कुछ अंगों में रक्त संचार में कमी और ऑक्सीजनीकरण के परिणामस्वरूप) प्रायः टखनों के आसपास अल्सर हो जाते हैं, विशेषतया अधिक आयु के रोगियों में यह अल्सर अधिक होते हैं। ये अल्सर बने रहते हैं और इनका उपचार भी कठिन होता है। तथापि ऊतकों में ऑक्सीजन की आपूर्ति सुधारने और हीमोग्लोबिन का स्तर बढ़ाने के लिए नियमित रक्ताधान कराने के साथ-साथ पैरों और टाँगों को प्रतिदिन एक-दो घंटों के लिए हृदय के स्तर ऊँचा रखने जैसे साधारण उपाय करने, बिस्तर को पैरों की तरफ से थोड़ा उठाकर सोने और जुराब पहनकर टखनों की हिफाजत करने से कुछ आराम मिल सकता है। औषधियाँ जैसे कि जिंक सल्फेट की गोलियाँ, इसी प्रकार हाइड्रॉक्सी यूरिया अकेले या भ्रूण में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ाने वाली औषधियाँ जैसे कि एरिथ्रोपोएटिन और ब्यूटेरेटस के साथ लेने से कुछ आराम मिल सकता है।

(5) **गुर्दों की जटिलताएँ :** थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों की अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में गुर्दे खराब होना भी शामिल है। यह रक्त में यूरिक एसिड की अधिकता का परिणाम हो सकता है। यूरिक एसिड अस्थि-मज्जा की अति सक्रियता से बनने वाला सबसे महत्वपूर्ण व्यर्थ पदार्थ है। एलोप्यूरिनोल नामक दवा से यूरिक एसिड की मात्रा को कम करने में सहायता मिल सकती है।

(6) **श्रोम्बोफीलिया :** रक्त की नलियों में रुकावट होने की संभावना में वृद्धि एक अन्य जटिलता है। इसमें श्रोम्बोसाइट या प्लेटलेट्स खून की नलियों में जमा होकर रक्त का थक्का बना देते हैं जिससे सामान्य रक्त संचार अवरुद्ध हो जाता है और इस प्रकार कोशिकाओं और ऊतकों को ऑक्सीजन की आपूर्ति में कमी आ जाती है। प्लेटलेट्स की संख्या की गिनती नियमित रूप से करने से चिकित्सक को

यह निर्धारित करने में सहायता मिलती है कि यदि इनकी संख्या बढ़ी हुई है तो वह इन्हें कम करने की दवा दे अथवा शल्य क्रिया होनी है या रक्त संचार में रुकावट आ गई है तो थक्का-रोधी दवा दे।

(7) **मज्जा-बाह्य रक्तोत्पादन** : एक्सट्रा मेड्युलरी एरिथ्रोपोएसिस - इससे लाल रक्त कोशिकाओं का उत्पादन अस्थि-मज्जा से बाहर होता है। थैलासीमिया मेजर के रोगियों में छोटी आयु से नियमित रक्ताधान होने के कारण अस्थि-मज्जा की सक्रियता में कमी आ जाती है। इसके विपरीत थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों में इस प्रकार नियमित रक्ताधान न होने के कारण उनके शरीर में अस्थि-मज्जा के अतिरिक्त अन्य भागों में भी लाल रक्त कोशिकाएँ बड़ी संख्या में बनती रहती हैं, प्रमुखतः वक्ष और रीढ़ के आसपास रक्तोत्पादक ऊतकों के विकास का एक्स-रे द्वारा पता चल सकता है।

रीढ़ के पास लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन से जब मेरु-रज्जू (स्पाइनल कॉर्ड) के चारों ओर दबाव बढ़ता है तो स्नायविक जटिलताएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस प्रकार की सक्रियता का पता प्रायः एक्स-रे जाँच या अधिक संवेदनशील एमआरआई (MRI) विधि से चल जाता है। यह दोहराना उचित होगा कि इन दशाओं का प्रबंधन प्रायः रक्ताधान चिकित्सा द्वारा किया जा सकता है, जिससे अतिरिक्त रक्त के उत्पादन में कमी आएगी और परिणामस्वरूप रीढ़ पर दबाव डालने वाले पदार्थ में भी कमी आएगी। जहाँ गम्भीर स्नायविक स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं वहाँ अधिक सक्रिय उपचार-विधि जैसे कि रेडियो थेरेपी का आवश्यकता पड़ सकती है।

(8) **हृदय और यकृत संबंधी जटिलताएँ** : दीर्घकालिक रक्ताल्पता से हृदय रोग भी हो सकते हैं जबकि लौह की अधिकता से हृदय और यकृत दोनों को क्षति पहुँच सकती है। थैलासीमिया मेजर की भाँति इन दोनों स्थितियों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

* असामान्य हीमोग्लोबिन या हीमोग्लोबिन के संरचनात्मक रूप-भेद

असामान्य हीमोग्लोबिन सामान्य हीमोग्लोबिन से संरचना और कभी-कभी व्यवहार में भी भिन्न होते हैं। महत्वपूर्ण असामान्य हीमोग्लोबिन हैं:

हीमोग्लोबिन S (HbS)

हीमोग्लोबिन C (HbC)

हीमोग्लोबिन E (HbE)

हीमोग्लोबिन D (HbD)

हीमोग्लोबिन Lepore लीपोर

ये हीमोग्लोबिन B-थैलासीमिया की भाँति वंशानुगत रूप से आते हैं। उदाहरणतया वे व्यक्ति जिनमें एक जीन सामान्य हीमोग्लोबिन से और एक जीन असामान्य हीमोग्लोबिन S, C, E या D से आता है। क्रमानुसार HbS, HbC, HbE या HbD के वाहक कहलाते हैं। वाहकों को B-थैलासीमिया के वाहकों की तरह प्रयोगशाला परीक्षणों के द्वारा पहचाना जा सकता है।

सम-युग्मज असामान्य हीमोग्लोबिन कोई व्यक्ति एक असामान्य हीमोग्लोबिन (S, C, E या D) माता और पिता में से किसी एक से ले सकता है और दूसरा असामान्य हीमोग्लोबिन (S, C, E या D) दूसरे से ले सकता है। तथापि केवल उन्हीं व्यक्तियों को जा माता और पिता दोनों ही से हीमोग्लोबिन-S वंशानुगत रूप से प्राप्त करते हैं, चिकित्सा की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण रोग, जिसे हीमोग्लोबिन-S का समयुग्मज या सिकल सेल एनीमिया कहा जाता है, होता है। अधिकतर मामलों में सम-युग्मज हीमोग्लोबिन C, D, या E के साथ किसी रोग का संबंध नहीं है इसीलिए ये चिकित्सा की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है।

B-थैलासीमिया के संयुक्त असामान्य हीमोग्लोबिन B-थैलासीमिया का असामान्य हीमोग्लोबिन के साथ सबसे सामान्य जोड़े ये हैं :

* HbS/B-थैलासीमिया और

* HbE/B-थैलासीमिया

* **HbS/B-थैलासीमिया**—यह थैलासीमिया मेजर या थैलासीमिया इन्टरमीडिया के अपेक्षा सिकल-सेल एनीमिया से अधिक मिलती-जुलती रोग-दशा उत्पन्न करता है।

* **HbE/B-थैलासीमिया**—यह सबसे आम असामान्य या थैलासीमिया के लक्षणों वाला हीमोग्लोबिन रूप-भेद है। यह दक्षिण-पूर्व एशिया में सर्वाधिक व्याप्त है। यह जोड़ी बहुत विविध प्रकार के रोग-लक्षण प्रकट करती है (फीनोटाइप या स्पेक्ट्रम की तीव्रता की विविधता)। चिकित्सा की दृष्टि से B-थैलासीमिया/HbE का लक्षणों की तीव्रता के आधार पर तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया जा सकता है।

* **मध्यम B-थैलासीमिया/HbE**—यह दक्षिण-पूर्व एशिया के कुल प्रभावित रोगियों के लगभग 15 प्रतिशत में मिलता है। रोगियों के इस ग्रुप में चिकित्सा संबंधी कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती और इनका हीमोग्लोबिन स्तर 9-12g/dL के बीच बना रहता है।

* **सीमित तीव्रता वाला B-थैलासीमिया HbE**—इस ग्रुप के अधिकतर रोगियों में B-थैलासीमिया इन्टरमीडिया के समान लक्षण प्रकट हो जाते हैं और इनके हीमोग्लोबिन का स्तर 6-7g/dL के बीच बना रहता है।

* **तीव्र B-थैलासीमिया Hb/E**—इस ग्रुप के रोगियों में थैलासीमिया मेजर जैसे तीव्र लक्षण होते हैं और हीमोग्लोबिन का स्तर 4-5g/dL की सीमा तक कम होता है। इन रोगियों का थैलासीमिया मेजर के रोगियों की भाँति उपचार किया जाता है।

रक्ताधान—इन रोगियों को रक्ताधान के दौरान बहुत ध्यानपूर्वक मॉनीटर किया जाता है ताकि उच्च रक्तचाप, दौरे और मस्तिष्क के रक्त-स्राव की चिकित्सा संबंधी जटिलताओं से बचा जा सके। उच्च रक्त-चाप को नियंत्रित करने के लिए उच्च रक्तचाप रोधी दवाएँ दी जा सकती हैं क्योंकि यदि इसे नियंत्रित न किया जाए तो मस्तिष्क में रक्त-स्राव से मृत्यु भी हो सकती है। जिन रोगियों को तीव्र रक्ताल्पता नहीं है उन्हें रक्ताधान नहीं देना चाहिए।

a-थैलासीमिया

मानव a-ग्लोबिन जीन क्रोमोजोम-16 पर स्थित होते हैं और वहीं द्विगुणित होते हैं। संश्लेषित a-शृंखलाओं की संख्या में कमी आ जाती है जब एक या दोनों a-ग्लोबिन जीन से संबंधित DNA का एक बड़ा अंश विलुप्त हो जाता है।

यदि एक जीन विलुप्त होता है तो व्यक्ति निष्क्रिय या वाहक प्रकार वाला aa/a⁻ होता है। यदि दो जीन विलुप्त हों तो व्यक्ति विशेषक वाला (Trait) aa/— या a⁻/a⁻ होता है। यदि तीन जीन विलुप्त हो तो व्यक्ति Hb^èkH रोग से ग्रस्त होता है, जिसका कारण है B-शृंखलाओं की अधिकता - इस दशा के विशेष लक्षण हैं—सीमित हीमोलिटिक अनीमिया, तिल्ली के आकार में वृद्धि (और कुछ दवाओं तथा इन्जेक्शनों के कारण उत्पन्न तीव्र हीमोलिटिक संकट)।

यदि चार जीन विलुप्त हों तो हाइड्राप्स फीटलिस (या Hb बार्टस) हो जाता है अर्थात भ्रूण की गर्भाशय में मृत्यु हो जाती है।

अध्याय 8

उपचार की स्थापित और भार्वा पद्धतियाँ

अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण (BMT)

अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण यदि सफल हो जाए तो थैलासीमिया मेजर के रोगियों को पूर्णतः रोगमुक्त कर सकता है। थैलासीमिया के लिए (BMT) 1982 में शुरू किया गया था। इस विधि से अब तक 1500 रोगियों का उपचार किया जा चुका है।

अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण क्या है?

अस्थि-मज्जा हड्डियों के अन्दर पाया जाने वाला स्पंजी ऊतक है जो रक्त में पाई जाने वाली सभी कोशिकाएँ बनाता है। वयस्कों में अस्थि-मज्जा पसलियों, छाती, सिर, कूल्हे और रीढ़ की हड्डियों में पाया जाता है, परन्तु जन्म के समय यह अन्य हड्डियों में भी होता है। अस्थि-मज्जा में वंश कोशिकाएँ (Stem Cell) होती हैं जिनसे लाल रक्त कोशिकाएँ, श्वेत रक्त कोशिकाएँ और प्लेटलेट्स बनते हैं। BMT में एक स्वस्थ व्यक्ति (Donor या दाता) से अस्थि-मज्जा लेकर रोगी (Recipient या प्रापक) को दिया जाता है। इसमें पहले रोगी की रुग्ण मज्जा को औषधियों द्वारा या कभी-कभी रेडिएशन द्वारा नष्ट किया जाता है। इस क्रिया को कन्डीशनिंग कहते हैं फिर स्वस्थ अस्थि-मज्जा जो प्रायः दाता के कूल्हे की हड्डी से ली जाती है। एक तरल पदार्थ के रूप में उसी प्रकार रक्त में चढ़ा दिया जाता है जिस प्रकार रक्त दिया जाता है। रोगी के रक्त में जाने के बाद यह मज्जा हड्डियों में पहुँचकर वहाँ सामान्य स्वस्थ कोशिकाएँ बनाना आरम्भ कर देती है। इसमें लगभग दो-तीन सप्ताह का समय लगता है।

इसके जोखिम-यद्यपि यह प्रक्रिया अत्यन्त सफल हो सकती है पर इसमें कुछ गम्भीर खतरे भी हैं इसलिए प्रत्यारोपण करने से पूर्व प्रत्येक केस में इसके खतरों और फायदों पर ध्यानपूर्वक विचार कर लेना चाहिए। सर्वोत्तम परिणाम के लिए पूरी तरह से टिश्यू मैच वाले भाई या बहन की अस्थि-मज्जा दी जानी चाहिए। इसकी जटिलताओं में संक्रमण और रक्त स्राव शामिल हैं जो प्रायः प्रापक की मज्जा को दाता की मज्जा से बदले जाने से पहले होता है। एक और जटिलता है GBHD जिसमें दाता की मज्जा प्रापक को विजातीय मानती है जिसके कारण त्वचा, आंतों और जिगर से सम्बन्धित समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह समस्याएँ साधारण गम्भीर या घातक भी हो सकती हैं। विशेषज्ञों की राय में थैलासीमिया से सम्बन्धित समस्याएँ जैसे लौह की अधिकता जीर्ण यकृत संक्रमण और हृदय तथा अन्तःस्रावी तन्त्र की समस्याएँ। BMT के उपरान्त सरलता से हल की जा सकती है और कभी-कभी क्षतिग्रस्त अंग भी ठीक हो सकते हैं, हालाँकि रोगी को जीवन भर ध्यानपूर्वक मॉनिटर करते रहना आवश्यक होता है। BMT के बाद रोगी के शरीर से प्रत्यारोपण से पहले के जमा हुए अतिरिक्त लौह को निकालने की आवश्यकता पड़ती है या कार्य कीलेटन द्वारा किया जाता है या प्रति एक दो सप्ताह में शरीर से रक्त निकाल लेने से भी यह कार्य आसानी से हो जाता है। सामान्यतः प्रति चौदह दिनों में शरीर के प्रति एक किलोग्राम चार के लिए छः मिली रक्त निकाला जा सकता है। यह समझना आवश्यक है कि BMT से केवल अस्थि-मज्जा का उपचार होता है। इसलिए गर्भधारण का विचार कर रहे रोगियों को यह ध्यान दिलाना आवश्यक है कि इस उपचार के बाद उनके जीन थैलासीमिया से प्रभावित रहेंगे और कोई प्रभावित जीन अब भी उनके होने वाले बच्चे में जा सकते हैं।

जोखिम को कम कैसे किया जा सकता है

(a) डोनर का चुनाव - जोखिम को कम करने का सबसे अच्छा उपाय है रोगी और डोनर के टिश्यू टाइप का पूरी तरह मिलना। रोगी के जुड़वा भाई या बहन का HLA रोगी के HLA से मिलान रखता है इसलिए यह आदर्श डोनर होते हैं। दूसरा उपयुक्त डोनर रोगी का वह भाई या बहन होता है जिसका HLA रोगी के HLA के साथ अधिकतम मिलान रखता हो। भाई और बहनों में से उपयुक्त मिलान वाला डोनर मिलने की संभावना चार में से एक ही होती है। परिवार (25 प्रतिशत) से बाहर का उपयुक्त डोनर मिलना अत्यन्त कठिन होता है।

ऊतक प्रारूप निर्धारित करने वाले जीन को ह्यूमन लिम्फोसाइट एंटीजन (HLA) जीन कहते हैं। इनका सम्बन्ध श्वेत कोशिकाओं में व्यक्त ऊतकों के प्ररूप से होता है। इन एंटीजनों में HLA-A, HLA-B, HLA-C और HLA-DR एंटीजन अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण (BMT) के लिए मिलान करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

HLA-A की स्थिति पर 59 एंटीजन HLA-B पर 36, HLA-C पर 36 और HLA-DR की स्थिति पर 137 एंटीजन होते हैं। इस पूरी प्रणाली में और बहुत सी HLA स्थितियाँ होती हैं और 500 से अधिक जीन होते हैं जिससे किसी भी जनसंख्या में अरबों-खरबों जोड़े बनाए जा सकते हैं।

फिर भी यह जीन आपस में सम्बद्ध होते हैं और समूह में ही वंशानुगत रूप से प्राप्त होते हैं। अतः भाई बहन माता और पिता

के दो-दो सेटों में से प्रत्येक से एक-एक सेट प्राप्त करते हैं जिससे उन सेटों के समान होने की सम्भावना 25 प्रतिशत हो जाती है। कुल मिलाकर इस बात की संभावना के रोगी का कम से कम एक भाई या बहन मिलान वाला हो और उसे थैलासीमिया भी न हो। यह परिवार के आकार पर निर्भर है जो रोगी अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण कराना चाहते हैं। उनमें से केवल 30 प्रतिशत रोगियों को पूरी तरह मिलान वाला डोनर मिलने की सम्भावना होती है। असम्बन्धित (परिवार से इतर) डोनर से प्राप्त अस्थि-मज्जा के मिलान का प्रयत्न करने में जो कठिनाइयाँ आती हैं वे इतनी अधिक हैं कि कोई सोच भी नहीं सकता। सैद्धान्तिक गणनाओं से यह पता चलता है कि किसी एक व्यक्ति की HLA रूपरेखा अन्य असम्बन्धित व्यक्ति की HLA रूपरेखा से। अरब के गुणक से भिन्न होती है दाता और प्रारूप की अस्थि-मज्जा का पूर्णतया मिलान आवश्यक है क्योंकि यदि मिलान में कमी हो तो सफलता की सम्भावना काफी कम हो जाती है इसलिए जब निकटतम सम्बन्धियों और परिवार के निकट सदस्यों में डोनर मिलने के सभी प्रयास विफल हो जाएँ तभी असम्बन्धित डोनर की तलाश आरम्भ करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त डोनर की आयु कम से कम तीन वर्ष होनी चाहिए क्योंकि इस आयु तक अस्थि-मज्जा पूरी तरह अपना कार्य करने लगती है। हाल के कुछ वर्षों में मिलान की तकनीक को सुधारने के प्रयासों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है ताकि मिलान किए गए असम्बन्धित दाता और रोगी के बीच प्रत्यारोपण सम्भव किया जा सके और इस प्रकार सम्भावित दाताओं की एक बड़ी संख्या का लाभ उठाया जा सके। ऐसी सूचियाँ बनाई गई हैं जिनमें दुनिया भर के उन दाताओं के नाम और पते के साथ उनके HLA के विशिष्ट लक्षण भी दर्ज हैं जो स्वेच्छापूर्वक अपना परीक्षण करवा चुके हैं जैसे ही स्वीकार्य HLA मिलान वाले किसी रोगी का पता चलता है दाता को सूचित करके प्रत्यारोपण की प्रक्रिया पूरी कर ली जाती है।

असम्बन्धित दाताओं की सूची बनाने का विचार पहले पहल 1987 में उभरकर आया और तब से अब तक प्रमुखतः अमेरिका और यूरोप में लगभग पैंतीस लाख सम्भावित दाताओं के नाम दर्ज किए जा चुके हैं। यद्यपि असम्बन्धित दाताओं के विषय में कुछ कार्य पहले ही किया जा चुका है। इससे सम्बद्ध खतरों को कम करने की दृष्टि से अभी और अनुसंधान की आवश्यकता है क्योंकि यह खतरे मिलान वाले भाई बहनों की अपेक्षा काफी ज्यादा है।

(b) रोगी का चुनाव - प्रत्यारोपण में कुछ रोगियों को अन्य रोगियों की अपेक्षा अधिक खतरा होता है। खतरों के कुछ कारकों की पहचान की गई है, यह कारक हैं :

- * जिगर के आकार में वृद्धि - 2 सेमी. से अधिक
- * जिगर में खराबी - फाइब्रोसिस या स्कारिंग
- * लौह की अधिकता पर नियन्त्रण में कमी

इन कारकों के अनुसार रोगियों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। प्रत्येक श्रेणी में प्रत्यारोपण की सफलता की दर अलग होती है। प्रथम श्रेणी में खतरे का केवल एक कारक होता है जबकि तृतीय श्रेणी में खतरे के तीनों ही कारक होते हैं। खतरे का एक और भी स्वतंत्र कारक होता है। वह है रोगी की आयु जिन रोगियों की आयु 16 वर्ष से अधिक होती है उनके परिणाम कम आयु के रोगियों की अपेक्षा खराब होते हैं।

नीचे दी गई तालिका देखें—

बच्चे (16 वर्ष)	संख्या	जीवित %	घटना शून्य %
श्रेणी-I	121	95	90
श्रेणी-II	272	85	81
श्रेणी-III	125	78	59
व्यस्क (17-22 वर्ष) 70	70	66	

(Pesaro Experience 1995)

आदर्शतः जिस रोगी का अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण किया जा रहा हो वह 16 वर्ष से कम आयु का होना चाहिए, उसका जिगर स्वस्थ हो। लौह की अधिकता कम हो और पूरी तरह मिलान वाला उसका कोई भाई या बहन मौजूद हो जैसा कि ऊपर दी गई तालिका में दर्शाया गया है। 16 वर्ष से अधिक आयु में प्रत्यारोपण कराने वाले रोगी की जीवित रहने की दर अपेक्षाकृत कम होती है। **पूर्ण-मिलान (सम्बन्धित व्यक्ति) वाले अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण की अन्य प्रवृत्तियाँ**

मिलान वाले असम्बन्धित दाताओं (MUDs), मिलान वाले परिवार के सदस्य जो रोगी के भाई-बहन नहीं हैं और माता-पिता से अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण से जुड़ी जटिलताओं के खतरों को कम करने और सफलता की दर में सुधार लाने के लिए चिकित्सकों द्वारा प्रयास किया जा रहा है।

इसका एक पक्ष है - प्रत्यारोपण की प्रक्रिया में होने वाले खतरों में कमी लाने के उद्देश्य से उपचार में संशोधन करना (कन्डीशनिंग)। तथापि परिणाम काफी अलग-अलग हो सकते हैं। खतरों और फायदों के बारे में अलग से विचार करने की आवश्यकता होती है।

थैलासीमिया में वैकल्पिक दाता से BMT के परिणाम

- * उन्नतीस थैलासीमिया मेजर के रोगी आयु (1.1.33 वर्ष) (अधिक 6 वर्ष)
 - छः समान HLA वाले सम्बन्धी
 - दो असमान HLA वाले सम्बन्धी
 - तेरह असमान HLA वाले भाई-बहन
 - आठ असमान HLA वाले माता-पिता
 - * अस्वीकरण/विफलता 55 प्रतिशत (असमानता के प्रकार से सम्बन्ध नहीं)
 - * तीव्र GVHD I-IV 47%
 - * दीर्घकालिक GVHD - 38%
 - * जीवित (FU 7-5 वर्ष) 65% (21% घटनाशून्य)
 - * प्रत्यारोपण मृत्यु दर 34% (50% GVHD-30% संक्रमण)
- (Gazler et al, Pesaro BMT 2000)

निष्कर्ष – पूरी तरह मिलान वाले भाई-बहन से अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण में रोग-मुक्ति की सम्भावना अधिक होती है। ठीक प्रकार से चुने गए रोगियों में अस्थि-मज्जा प्रत्यारोपण से सम्बन्धित मृत्यु दर 5 प्रतिशत की सीमा तक कम है। प्रत्यारोपण के खतरों को और कम करने की दिशा में कार्य किया जा रहा है। इसके द्वारा उन प्रत्यारोपणों के परिणाम में सुधार लाना शामिल है जिनमें दाता भाई या बहन का HLA रोगी से पूरी तरह मिलान नहीं रखता।

प्लेसेन्टा रज्जु से रक्त प्रत्यारोपण

यह एक अन्य प्रत्यारोपण विधि है। इसमें एक महिला जिसका पहला एक बच्चा रोगी है, उसके गर्भस्थ शिशु के HLA के गुणों की जाँच की जाती है। यदि गर्भस्थ शिशु का HLA पहले बच्चे के HLA से मेल रखता है तो रज्जु रक्त-बच्चे के जन्म के बाद प्लेसेन्टा और नाभि-रज्जु में रह जाने वाला रक्त, जोकि रक्त कोशिकाएँ बनाने वाली वंश कोशिकाओं का एक अच्छा स्रोत है। रोगी बालक में अस्थि-मज्जा के स्थान पर प्रत्यारोपित किया जा सकता है। यद्यपि इस विधि में एक प्रमुख कमी यह है कि दाता के रज्जु-रक्त में न्यूक्लियेटिड कोशिकाओं को न्यूनतम संख्या रोगी के शरीर के भार के अनुसार प्रति/किलो 1×10^7 से अधिक होनी चाहिए।

पहला सफल रज्जु-रक्त प्रत्यारोपण

आज से दस वर्ष पूर्व किया गया था तब से दुनिया भर में पाँच सौ ऐसे आपरेशन किए जा चुके हैं। इस विधि से थैलासीमिया मेजर के कुछ रोगियों को रोगमुक्त करने में सफलता मिली है तथापि सफलता की दर में सुधार करने के लिए और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है। थैलासीमिया के लिए रज्जु-रक्त प्रत्यारोपण

रोगियों की संख्या

प्रत्यारोपित	10
जीवित	10
रोगमुक्त	4
थैलासीमिया की पुनरावृत्ति	4

(Rocha et al, 1998, Eurocord)

इस प्रकार के प्रत्यारोपण के सम्भावित लाभ

- * रज्जुरक्त संक्रामक जीवाणुओं से अपेक्षाकृत मुक्त होता है।
- * GVHD का जोखिम कम होगा क्योंकि GVHD के कारक T-lymphocytes जन्म के समय पूरी तरह सक्रिय नहीं होते (थैलासीमिया के रोगियों में इसकी पुष्टि अभी नहीं हुई है)
- * परम्परागत BMT की अपेक्षा HLA मिलान के न्यूनतर स्तर की आवश्यकता पड़ेगी। अभी तक प्राप्त परिणाम यह दर्शाने के लिए पर्याप्त नहीं है कि क्या यह सम्भावित लाभ उन्नत परिणामों के साथ प्राप्त किए जा सकते हैं। स्वेच्छित ब्लड बैंकों की वर्तमान प्रणाली के समान रज्जु-रक्त भंडारण केन्द्रों का एक तन्त्र स्थापित करने की दिशा में कार्य किया जा रहा है। उपयुक्त रूप से उपचारित करने के बाद रज्जु-रक्त को 98°C < बीस वर्षों तक संरक्षित रखा जा सकता है। न्यूयार्क रक्त केन्द्र रज्जु-रक्त का सबसे बड़ा बैंक है। इसमें 7000 से अधिक नमूने एकत्र किए गए हैं और इनसे दो सौ से अधिक प्रत्यारोपण की आवश्यकता वाले रोगियों को लाभ पहुँचा है। न्यूयार्क रक्त केन्द्र से रज्जु-रक्त प्राप्त करने और उसका प्रत्यारोपण करवाने में आजकल लगभग 28000 अमरीकी डालर का खर्च आता है। फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, बेल्जियम, नीदरलैण्ड्स और स्पेन में भी रज्जु-रक्त बैंकिंग सेवा विकसित कर ली है।

अध्याय 9

उपचार की अन्य पद्धतियाँ

भ्रूण में हीमोग्लोबिन का उत्प्रेरण

वैज्ञानिक थैलासीमिया के उपचार की अन्य विधियों की खोज (प्रमुखतः नॉन इनवेसिव उपायों में निरन्तर लगे हुए हैं) जिनमें प्रचलित विधियों की अपेक्षा लागत और खतरा कम हो। अधिकतर नई विधियों में ग्लोबिन शृंखलाओं के बीच असंतुलन को कम करने पर ध्यान दिया गया है। उदाहरण के लिए, ऐसी कुछ अन्य प्रकार की शृंखला के उत्पादन में वृद्धि कर सकती है जो A-शृंखला के साथ संयोजन से भ्रूण का हीमोग्लोबिन HbF (α₂-γ₂) बनाती हैं जिससे मुक्त A-शृंखलाओं की संख्या में कमी आ जाती है। यह दवाएँ अस्थि-मज्जा की सक्रियता को निरुद्ध करती हैं और γ-शृंखला के उत्पादन का उद्दीपन करती हैं। इनमें 5-एज़ासाइटिडीन, साइटोसाइन अराबिनो साइट, हाईड्राक्सी यूरिया, एरिथ्रोकोएटिन और ब्यूटेरिक एसिड के उत्पाद सम्मिलित हैं। 5-एज़ासाइटिडीन और साइटोसाइन अराबिनो साइट से थैलासीमिया के रोगियों में विषाक्तता के प्रभाव देखे गए हैं। अतः इन औषधियों पर किया जा रहा कार्य रोक दिया गया है। हालाँकि अपेक्षाकृत नए कम विषाक्त उत्पादों पर अनुसंधान किया जा रहा है। हाईड्राक्सी यूरिया और एरिथ्रोकोएटिन के प्रयोग से कुछ सफलता मिली है। हालाँकि अभी तक थैलासीमिया मेजर की अपेक्षा थैलासीमिया इंटरमीडिया के रोगियों को अधिक लाभ हुआ है।

γ-शृंखला के संश्लेषण को प्रेरित करने में ब्यूटेरिक एसिड के उत्पादों की भूमिका को अभी पूरी तरह समझा नहीं गया है तथापि ब्यूट्रेटस में आरजिनीन ब्यूट्रेट सर्वाधिक प्रभावी है जिसे नस द्वारा दिया जाता है। रक्त में चढ़ाया जाता है। कुछ रोगियों में अन्य रोगियों के अपेक्षा इस उपचार को बेहतर परिणाम मिलते हैं। इसके कारण का अभी पूरी तरह पता नहीं चल पाया है। भविष्य में प्रगति आरजिनीन ब्यूट्रेट और हाईड्राक्सी यूरिया के सम्मिश्रण अथवा आरजिनीन ब्यूट्रेट और एरिथ्रोकोएटिन के सम्मिश्रण या इन तीनों दवाओं के एक साथ प्रयोग पर निर्भर हो सकती है। थैलासीमिया मेजर में इन दवाओं के प्रयोग का उद्देश्य रक्ताधानों के बीच की अवधि को लम्बा करना है जबकि थैलासीमिया इंटरमीडिया में उद्देश्य होता है। रक्ताधान की आवश्यकता ही न पड़ने देना या उसे जब तक हो सके टालना और अस्थि-मज्जा के फैलाव के कारण होने वाले हड्डियों के दर्द को कम करना।

जीन थैरेपी

थैलासीमिया मेजर की पूर्ण चिकित्सा के लिए अस्थि-मज्जा की वंश कोशिकाओं में स्वसी जीन डालने की आवश्यकता होती है। इस उपाय को जीन थैरेपी कहा जाता है। गत दस वर्षों से ऐसी प्रणाली विकसित करने में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है जो स्वस्थ जीन को रोगी की वंश कोशिकाओं के अन्दर पहुँचाने में सक्षम है। हाल के कुछ वर्षों में वाइरस जीवाणुओं (रैट्रो वाइरस) का प्रयोग किया गया है तथापि इन तरीकों में एक प्रमुख समस्या यह सुनिश्चित करना है कि स्वस्थ जीन के अन्तरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न B-शृंखलाएँ लम्बी अवधि तक पर्याप्त उच्च मात्रा और गुणवत्ता बनाए रखें।

इसके अतिरिक्त वाइरस के अन्तरण में सुरक्षा और अन्य जीन के साथ व्यतिकरण के विषय में चिन्ता जताई गई है।

अंतःरोपण से पूर्व HLA मिलान द्वारा निदान

हाल के कुछ वर्षों में शोध में अन्तःरोपण-पूर्व निदान नामक तकनीक (PGD) पर भी ध्यान दिया गया है जिसमें प्रभावित बच्चे के HLA का HLA मिलान किए हुए निशेचित थैलासीमिया से मुक्त अण्डे के HLA से मिलान किया जाता है फिर उसे स्त्री के गर्भाशय में रोपित कर दिया जाता है। यह नया बच्चा अपने भाई-बहन के प्रत्यारोपण के लिए पूरी तरह मिलान वाला अस्थि-मज्जा उपलब्ध कराने में समर्थ होगा। इन तरीकों से हालाँकि कुछ महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्न सामने आ रहे हैं फिर भी इनसे रोग की चिकित्सा की नई आशाएँ भी बँध रही हैं। इसके अतिरिक्त यह उपाय अत्यन्त खर्चीले हैं और तकनीक की दृष्टि से मुश्किल हैं। फिर भी तेजी से हो रही प्रगति से यह तकनीक निकट भविष्य में अधिक व्यापक रूप से उपलब्ध हो जाएगी।

अध्याय 10

मनोवैज्ञानिक समस्याएँ

रोगी-अन्य किसी दीर्घकालिक रोग की भाँति थैलासीमिया मेजर के रोगियों को भी काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस रोग की अपनी आवश्यकताएँ हैं और इसके साथ कुछ प्रभावित देशों में जनचेतना का अभाव भी है। इससे रोगियों और उनके परिवारों को थैलासीमिया का सामना करने के प्रयास में भावात्मक कठिनाइयों से गुज़रना पड़ता है। रोगियों को अपने जीवन में बहुत बार कुंठा, निराशा, शोक, विरोध, अवसाद, व्यग्रता, बेचारगी, मृत्यु का भय, आत्मविश्वास का अभाव, अकेलापन, क्रोध, उपेक्षा, अविश्वास, अति सुरक्षा, आत्म-सम्मान की कमी जैसे अनेक भावात्मक अनुभवों से गुज़रना पड़ सकता है। इसके विपरीत रोगियों को अन्य सकारात्मक अनुभव भी होते हैं। जैसे साहस, चुनौती और धैर्य जिससे उनके विकास की गति में वृद्धि होने और उनके अधिक सृजनशील साहसी, धैर्यवान और विश्वस्त बनने में सहायता मिलती है।

माता-पिता : इसी प्रकार के निराशा और आशा के भाव माता और पिता के मन में भी आते हैं। वे यह भी सोच सकते हैं/उन्हें यह भी लग सकता है कि अपने बच्चे की इस दशा के लिए वे स्वयं ही उत्तरदायी या दोषी हैं। ज्यादातर माता-पिता को जब पहली बार अपने बच्चे के रोग के बारे में पता चलता है तब वे स्तब्ध रह जाते हैं। जिन देशों में इस रोग और इसके उपचार के विषय में जानकारी बिल्कुल कम है या बिल्कुल नहीं है, उन देशों में माता-पिता घर में की जाने वाली उस गहन देखभाल से अनभिज्ञ होते हैं जो उनके बच्चे के स्वास्थ्य के दीर्घकालीन पूर्वानुमान के लिए अनिवार्य होती है। बच्चे को थैलासीमिया रोग है इसका पता चलना दाम्पत्य सम्बन्धों में भी काफी तनाव पैदा कर सकता है, जिसकी परिणति अलगाव या कभी-कभी तलाक में भी हो सकती है। इसके विपरीत अपने बच्चे को सहारा और संरक्षण देने का दृढ़ निश्चय रखने वाले माता-पिता को यह रोग एक दूसरे के और निकट भी ला सकता है और यह भी उतना ही सम्भव है कि रोगग्रस्त बच्चे के माता-पिता अपना अधिकतर ध्यान थैलासीमिया ग्रस्त बच्चे पर लगाएँ, जिससे परिवार के अन्य सदस्यों विशेषतः अन्य बच्चों के साथ उनके सम्बन्धों पर तनाव पड़े।

रोगी और माता-पिता

रोगी और माता-पिता दोनों के भावात्मक अनुभव और इसके साथ लम्बे समय तक चलने वाले उपचार की दुखद वास्तविकता जिसमें रक्त चढ़ाने और आयरन-कीलेटन के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ किया जाता है। प्रायः व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं को जन्म दे सकते हैं। थैलासीमिया तथा अन्य जीन्स सम्बन्धी वंशानुगत रोगों के प्रति सामाजिक लांछन के कारण अधिकतर माता-पिता किसी अन्य के साथ इस रोग की चर्चा नहीं करना चाहते और अपने निकट सम्बन्धियों से भी इसे छिपाते हैं। जिन देशों में जनता की जागरूकता का स्तर ऊँचा और अच्छा है और चिकित्सा सम्बन्धी प्रगति से थैलासीमिया के रोगियों के जीवन स्तर और जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हो गई है रोगी और उनके माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य प्रायः उन्हीं संवेदनाओं का अनुभव करते हैं जब तक कि वे यह स्वीकार न करने लगे कि उन्हें थैलासीमिया के साथ ही जीना है। और वे इस रोग का सामना करना न सीख जाँ इसलिए यह अपेक्षित है कि रोगी और उसके माता-पिता कुछ समय तक तो दुखी रहेंगे। ऐसे ही चलने देना चाहिए जब तक कि तीव्र नकारात्मक संवेदनाएँ स्वयं शान्त न हो जाएँ और यह रोग तथा इसका उपचार उनके दैनिक जीवन का एक अंग न बन जाए। इस अवधि के दौरान विशेषज्ञ चिकित्सकों से प्राप्त सहायता अत्यन्त मूल्यवान हो सकती है तथापि इस परिचर्चा का निराशाजनक पहलू सीमित संसाधनों वाले प्रभावित देशों में देखने को मिलता है जहाँ रोगी और माता-पिता को इस रोग के उपचार के विषय में जानकारी तो मिलती है पर समस्या के समाधान के लिए उनके पास साधन अत्यन्त सीमित होते हैं। इसकी परिणति जीवन भर दुख, निराशा, कुंठा, अवसाद और एकाकीपन में होती है। रोग का निदान न होने या निदान गलत होने के कारण और उपयुक्त उपचार न मिलने या उपचार बिल्कुल ही न मिलने के कारण इन देशों में रोगियों की मृत्यु प्रायः बहुत कम आयु में ही हो जाती है।

जानकारी और सहायता प्राप्त करना

रोगग्रस्त बच्चे के माता-पिता को थैलासीमिया के विषय में अधिक से अधिक स्रोतों से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। यह जानकारी पुस्तकालयों, इंटरनेट और अन्य थैलासीमियाग्रस्त बच्चों के माता-पिता से प्राप्त हो सकती है। नेशनल थैलासीमिया एसोसिएशन और थैलासीमिया इंटरनेशनल फेडरेशन अभिभावकों को जानकारी और सहायता का महत्वपूर्ण स्रोत और रोग के साथ जीने बल्कि अच्छी प्रकार जीने में अपने बच्चे की सहायता करने के उनके आत्मविश्वास को दृढ़ करने में सहायक होकर एक प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। जिन अभिभावकों को इस रोग, इसके उपचार और इसकी रोकथाम के विषय में अच्छी जानकारी है वे अपने बच्चे की अच्छी देखभाल कर सकते हैं और यदि चाहें तो दूसरे प्रभावित बच्चे के जन्म से बच सकते हैं। डॉक्टर जानकारी के साथ-साथ मार्गदर्शन

और आश्वासन का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत है नर्स की भूमिका का भी बड़ा निर्णायक महत्त्व होता है। कुछ मामलों में नर्स और रोगी का सम्बन्ध उस सम्बन्ध से भिन्न हो सकता है जो डॉक्टर और रोगी के बीच होता है। रोगी के साथ आमतौर पर लम्बा समय गुजारने के कारण उसके द्वारा अनुभव की जा रही कुछ खास समस्याओं के बारे में प्रायः नर्स को सबसे पहले पता चलता है। इतना ही नहीं रक्ताधन इन इकाई के अनौपचारिक परिवेश में नर्स बार-बार रोगी के परिवारजनों और मित्रों के सम्पर्क में आती है जिन्हें रोगी को होने वाली उपचार सम्बन्धी कठिनाइयों के विषय में अधिक जानकारी हो सकती है और प्रायः यह लोग इस प्रकार की जानकारी देने में रोगी की अपेक्षा अधिक तत्पर होते हैं तथापि यह आवश्यक है कि यह जानकारी डॉ. तक पहुँचा दी जाए ताकि आवश्यक हो तो उपचार में परिवर्तन किया जा सके।

डॉक्टर और नर्स की भूमिका का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र उपचार-अनुपालन से सम्बन्धित है। कई माता-पिता और रोगियों की राय में थैलासीमिया मेजर की चिकित्सा का सबसे कठिन पहलू है आयरन कीलेटन की शुरुआत हर महीने होने वाले रक्ताधान के लिए स्वयं को सफलतापूर्वक तैयार कर लेने के बाद रोगियों और माता-पिता के समक्ष एक और नई बाधा आ खड़ी होती है। डॉक्टर और नर्स प्रायः इस स्थिति को बहुत ज्यादा आसान बना सकते हैं जिसका परिणाम होता है अधिक सरल और सफल उपचार योजना थैलासीमिया मेजर से पीड़ित छोटा बच्चा, किशोर और वयस्क रोगी।

शिशु रोगी : जीवन के आरम्भिक वर्षों में बच्चा थैलासीमिया के उपचार में होने वाले कष्ट और असुविधा का अनुभव तो करता है पर वह यह नहीं समझ पाता कि उसके साथ क्या हो रहा है तथापि यह वही समय होता है जब बच्चे के मन में अपनी देखभाल करने वाले व्यक्ति के प्रति आस्था और विश्वास का विकास होता है। अतः यह महत्वपूर्ण है कि माता-पिता यथाशीघ्र स्थिति को स्वीकार कर लें और बच्चे के साथ मजबूत और स्वाभाविक सम्बन्ध बनाने की कोशिश करें जिसमें उपचार के माध्यम से उसकी सहायता भी शामिल है। छोटे बच्चों में कठिनाइयाँ अधिक स्पष्टता से सामने आने लगती हैं जब बच्चा काम स्वयं करने और इसमें पहल करने की ज्यादा आजादी चाहने लगता है। यही वह समय है जब बच्चा यह समझने लगता है कि उसे सभी कुछ करने की छूट नहीं है। खासतौर से यह कार्य जो उसकी आयु के अन्य बच्चे करते हैं वह नहीं कर सकता।

बच्चा जब स्कूल जाने योग्य हो जाता है तो स्थितियाँ अधिक कठिन हो जाती हैं। उपचार विलम्ब से शुरू होने या उपचार ठीक न होने से रोगी की हड्डियों में बदलाव आ जाते हैं या इसके साथ-साथ उनके विकास की गति मन्द पड़ जाती है तो उपचार के कष्ट और जटिलताओं के अतिरिक्त दूसरों से भिन्न होने खासतौर से भिन्न देखने का एहसास रोगी बालक के मन पर उसके स्वास्थ्य के विषय में काफी गंभीर और हानिकारक प्रभाव डाल सकता है और यही वह समय है जब बच्चा अपने स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त करने पर बहुत जोर देने लगता है। इस समय माता-पिता और डॉक्टर रोग के विषय में जानकारी देने और अत्यन्त आवश्यक रूप से उसे आत्मविश्वास का अनुभव कराने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यदि वे आवश्यकता से अधिक ख्याल रखे बिना (विशेषतः माता-पिता) इसमें सफल हो गए तो समझिए एक आत्मविश्वासपूर्ण बच्चे के एक आत्मविश्वासपूर्ण किशोर और एक आत्मविश्वासपूर्ण व्यस्क में विकसित होने की बुनियाद पड़ चुकी होगी।

किशोरावस्था—यह सम्भवतः सबसे कठिन समय है। यह वह समय है जब बच्चे विशेष रूप से असुरक्षित होते हैं क्योंकि वे बड़े होने के कठिन दौर से गुजर रहे होते हैं। प्रायः इसी समय थैलासीमिया का उपचार जीवन पर्यन्त चलते रहने की वास्तविकता पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है किन्तु यही वह समय भी है जब रोगी को यह मान लेना चाहिए कि उसमें अपने जीवन को नियन्त्रित करने की सामर्थ्य है। अपेक्षित व्यवहार से विद्रोह थैलासीमियाग्रस्त किशोरों में उतना ही सामान्य है जितना कि अन्य किशोरों में किन्तु थैलासीमिया के रोगों में इस बात का खतरा रहता है कि कहीं यह विद्रोह उपचार से इन्कार का रूप न ले ले खासतौर से यह बात आयरन कीलेटन के विषय में कही जा सकती है। थैलासीमिया से पीड़ित किशोर अवस्था के रोगियों को आश्वस्त और प्रसन्न रखने और उपचार के अनुपालन में सहायता करने में माता-पिता भाई बहन और स्वास्थ्य कर्मियों जिनमें डॉक्टर, नर्स और मनोवैज्ञानिक भी शामिल हैं यह सभी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वयस्क अवस्था — जब रोगी वयस्क हो जाते हैं तो उनके सामने नई चुनौतियाँ आ जाती हैं हालाँकि वयस्क होते-होते रोगियों में उस अतिरिक्त आत्मविश्वास और आशा का विकास हो जाता है जो बचपन में उनमें नहीं था। अपने माता-पिता और परिवार की भाँति रोगी भी अधिक मजबूत और समझदार हो जाते हैं और इस प्रकार वह अपने से छोटी आयु के रोगियों, उनके माता-पिता तथा परिवारजनों के लिए एक उदाहरण बन जाते हैं फिर भी जब रोगी अपनी जीवन शैली और व्यवसाय आदि के विषय में निर्णय लेना आरम्भ करता है या सम्भवतः दीर्घकालिक सम्बन्धों की ओर अग्रसर होता है अथवा उच्च शिक्षा, रोजगार, विवाह और पारिवारिक जीवन आरम्भ करने का विचार करता है तो उस समय उपचार की कठिनाइयाँ खासतौर पर क्षोभजनक हो सकती हैं इसलिए रोगियों को अपने तथा स्वयं से जुड़े अन्य लोगों के लिए प्रोत्साहन की निरन्तर आवश्यकता रहती है ताकि वे निर्धारित उपचार का पालन कर सकें जब रोगी को यह पता चलता है कि वह सन्तानोत्पत्ति के योग्य नहीं है तो वह और भी तनावग्रस्त हो जाता है। खासतौर से उन वयस्क रोगियों में मृत्यु की चिन्ता दुख

का एक बड़ा कारण है जो रोग की चिकित्सा सम्बन्धी जटिलताओं के विषय में अधिक जागरूक हैं और इस रोग के कारण अपने मित्रों को खो चुके हैं अलग-अलग आयु और समय पर आने वाली हर चुनौती का सामना करने के लिए परिवार, मित्रों और स्वास्थ्य कर्मियों द्वारा निरन्तर सहयोग और प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है और इससे भी अधिक आवश्यक होता है रोगी का सकारात्मक रुख और उसका प्रयास थैलासीमिया का रोगी बड़ा होकर कितना आत्मविश्वासपूर्ण और परिपक्व होगा इसका सम्बन्ध उसको प्राप्त सहयोग के स्तर के साथ-साथ यह जानने से है कि रोगी के सक्रिय सहयोग के बिना सफल नहीं हुआ जा सकता। यदि उपयुक्त उपचार सुलभ हो और उसे पर्याप्त सहायता उपलब्ध कर दी जाए तो अधिकतर रोगी लम्बे समय तक रोग के साथ जीवन व्यतीत करने के नकारात्मक पहलू का काफी हद तक सामने कर सकते हैं और प्रायः सभी अभिलाषाएँ पूर्ण कर सकते हैं तथा अपनी आकांक्षाओं और सपनों को हकीकत में बदल सकते हैं।

दुर्भाग्यवश थैलासीमिया से बुरी तरह प्रभावित विश्व के अधिकतर देश, विश्व के विकासशील भाग में हैं जहाँ राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरणों, माता-पिताओं और स्वास्थ्य कर्मियों से रोगी को मिलने वाली सहायता अत्यन्त सीमित संसाधनों, कमजोर स्वास्थ्य, व्यवस्था और अन्य स्वास्थ्य प्राथमिकताओं पर निर्भर होती है।

TIF की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका प्रभावित देशों के राष्ट्रीय थैलासीमिया संघों को बढ़ावा देना और राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधि करणों को निरन्तर प्रोत्साहन और सहायता देना है ताकि वे इस समस्या को पहचानें और यह भी जानें कि यदि ठीक से नियन्त्रित न किया गया तो इस रोग का उनके जन स्वास्थ्य पर कितना गम्भीर प्रभाव पड़ेगा।

अतिरिक्त जानकारी

जीवन और उसकी गुणवत्ता : पिछले 10 से 20 वर्षों में थैलासीमिया के उपचार में हुई आश्चर्यजनक प्रगति से उन रोगियों की जीवन अवधि और गुणवत्ता में प्रभावशाली वृद्धि हुई है, जिनकी निर्धारित डॉक्टरी उपचार तक पहुँच है, जो इसका खर्च उठा सकते हैं और इसका अनुपालन कर सकते हैं। तथापि उन देशों में भी जहाँ थैलासीमिया के हर रोगी को उपयुक्त डॉक्टरी इलाज उपलब्ध है आयरन सम्बन्धी जटिलताएँ मृत्यु का प्रमुख कारण रहती हैं। विश्व के विकसित और विकासशील दोनों ही भागों में रोगी के जीवन के लिए DFO द्वारा आयरन कीलेटन उपचार का अनुपालन एक निर्णायक कारक होता है किन्तु विकासशील देशों में जबकि अधिकतर रोगियों की संख्या DFO की उपलब्धता और उसका व्यय उठाने की सामर्थ्य है वहीं विकसित देशों में जहाँ यह दवा रोगियों को आसानी से उपलब्ध है समस्या यह सुनिश्चित करना है कि रोगी इस कठिन और कष्टदायक उपचार को निष्ठापूर्वक लें और जब-जब आवश्यकता हो DFO का प्रयोग करें 1996 में प्रकाशित (ए) पिगा तथा अन्य के एक शोध से यह प्रदर्शित होता है कि जहाँ रोगी प्रतिवर्ष 225 से अधिक DFO इन्जेक्शन लेते हैं जीवन दर सबसे अधिक है। जीवन दर जैसे-जैसे कम होती जाती है DFO इन्जेक्शन की संख्या भी कम होती जाती है। रोगी आयरन कीलेटन उपचार का पालन करे। यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता का अर्थ है कि स्वास्थ्य कर्मी माता-पिता और परिवार की रोगियों को प्रोत्साहित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

लेखक	वर्ष	रोगियों की संख्या अति रक्ताधान और DFO कीलेटन वाले रोगियों में जीवन दर
* मौडेल और अन्य	1982	92 25 वर्ष की आयु पर 25 प्रतिशत, 1963 के बाद ब्रिटेन में जन्मे, विशेषज्ञ तथा सामान्य तथा दोनों ही प्रकार की इकाइयों में उपचार लेने वाले रोगियों में जिनकी औसत DFO मात्रा प्रति सप्ताह 4 ग्राम से अधिक थी।
* जुरलो तथा अन्य	1982	1087 15 वर्ष की आयु पर 84.2%, 1965-1969 की अवधि में जन्मे रोगियों में जबकि 15 वर्ष की आयु पर 96.9% 1970-1974 की अवधि में जन्मे रोगियों में सात सोशलिष्ट केन्द्रों पर उपचार हुआ।
* ब्रिटनहम तथा अन्य	1994	59 25 वर्ष पर 100 प्रतिशत अच्छी तरह कीलेटेड रोगियों में जबकि 25 वर्ष की आयु पर 32 प्रतिशत जैसे-तैसे कीलेटन उपचारित रोगियों में जिनका जन्म 1963 और 1987 के बीच हुआ, जो एक ही केन्द्र में विशेषज्ञ द्वारा नियमित जाँच करवाते रहें।
* ओलिवेरी तथा अन्य	1994	97 भली प्रकार कीलेटेड रोगियों में 91 प्रतिशत जबकि जैसे-तैसे कीलेटेड रोगियों में 18 प्रतिशत, 15 वर्ष उपचार के बाद रोगियों का उपचार तीन विशेषज्ञता इकाइयों पर हुआ।
* गेआरडिना तथा अन्य	1996	88 1963 के बाद जन्मे और एक विशेषता केन्द्र पर उपचार लेने वाले रोगियों में औसत जीवन अवधि 29 प्रतिशत वर्ष
* पिदा तथा अन्य	1996	257 25 वर्ष की आयु पर 66 प्रतिशत 1958 से 1993 के बीच जन्मे और एक ही विशेषज्ञता केन्द्र पर उपचार लेने वाले रोगियों में।
* बार्बना-पिगनाटी तथा अन्य	1998	1146 1970 से 1974 के बीच जन्मे और सात विशेषज्ञता केन्द्रों पर उपचार लेने वाले रोगियों में 25 वर्ष की आयु पर 82 प्रतिशत।
* मॉडेल तथा अन्य	2000	796 स्पेशलिस्ट ओर नान स्पेशलिस्ट दोनों ही प्रकार की इकाइयों पर उपचार लेने वाले ब्रिटेन के रोगियों में 35 वर्ष की आयु से पहले मृत्यु दर 50 प्रतिशत।
* डेविस तथा अन्य	2001	103 40 वर्ष की आयु पर 78 प्रतिशत 1951 से 1997 तक जन्मे सभी रोगियों में और 25 वर्ष की आयु पर 100 प्रतिशत 1974 के बाद जन्मे रोगियों में जिनका उपचार ब्रिटेन में एक ही स्पेशलिस्ट यूनिट पर हुआ।

ऊपर दी गई तालिका में 20 वर्षों के दौरान थैलासीमिया मेजर में उत्तर जीविता पर किए गए अधिकतर अध्ययनों के परिणाम दिए गए हैं। यह आँकड़े दर्शाते हैं कि जिन रोगियों का आरम्भ से ही उपचार अच्छी प्रकार होता रहा है विशेष तौर पर 1974 के पश्चात जन्म लेने वाले रोगी जब DFO के सर्वोत्तम उपयोग की जानकारी सामने आने लगी थी और जो अब भी उपयुक्त उपचार ठीक प्रकार करवा रहे हैं। उनके लम्बे जीवन और अच्छी तरह जीने की बहुत अधिक सम्भावना है। ऐसे समर्पित केन्द्रों की स्थापना जहाँ रोगी सर्वोत्तम उपचार प्राप्त कर सकता है। अनेक देशों में थैलासीमिया मेजर के रोगियों के जीवन स्तर और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार का प्रमुख कारण रही है। हालाँकि दुर्भाग्यवश कुछ विकासशील देशों में अभी बहुत कम काम हुआ है। वहाँ काफी कार्य किया जाना चाहिए ताकि थैलासीमिया के रोगियों के डॉक्टरी उपचार का स्तर उन्नत किया जा सके। अन्य प्रश्न जो रोगी के साथ-साथ उनके माता-पिता के लिए भी महत्वपूर्ण

हो सकते हैं वे प्रश्न विवाह, परिवार पोषण और शारीरिक गतिविधियों से सम्बन्धित हैं।

आहार और थैलासीमिया

सामान्यतः थैलासीमिया के रोगियों के लिए किसी विशेष आहार की आवश्यकता नहीं होती परन्तु रोगियों को लौह की अधिकता वाले भोजन से बचना चाहिए। एल्कोहल युक्त पदार्थों से बचना या इन्हें कम मात्रा में लेना समझदारी है विशेषतः जिगर को क्षति का खतरा रहता है। इसका कारण है जिगर में लौह का इकट्ठा होना और रोगियों के हिपैटाइटिस-B से संक्रमित होने की सम्भावना।

खेलकूद और थैलासीमिया

थैलासीमिया रोगी अधिकतर खेलों में भाग ले सकते हैं परन्तु कितना और किस प्रकार के खेल में भाग ले सकते हैं यह रोगी के स्वास्थ्य की दशा पर निर्भर करता है और इन विषय पर डॉक्टर की राय भी ले लेनी चाहिए।

थैलासीमिया और अवकाश

TIF ने पूरी दुनिया के विशेषज्ञ डॉक्टरों और चिकित्सा केन्द्रों की सूची तैयार की है (यह TIF की वेबसाइट पर उपलब्ध है) जो थैलासीमिया मेजर के रोगों को उपचार उपलब्ध करा सकते हैं। यात्रा पर निकलने से पूर्व रोगियों को अपने गन्तव्य स्थान से निकटतम चिकित्सा केन्द्र का पता लगा लेना चाहिए और घर से निकालने से पूर्व उस केन्द्र के स्थानीय चिकित्सक से सम्पर्क भी कर लेना चाहिए। रोगियों को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि किसी देश में जोन से पूर्व उन्होंने सभी आवश्यक वैक्सीन ले ली है (अपने चिकित्सक से परामर्श करके) और उन्हें उस देश में व्याप्त विशेष संक्रमणों के विषय में जानकारी है जहाँ वे जाना चाहते हैं (WHO की वेबसाइट से जारी यात्रा परामर्श देख लें) रोगी के उपचार के लिए आवश्यक सभी दवाएँ जिसने एल्टीबायटिक और विसंक्रमित उपकरण भी शामिल हैं ध्यान से पैक करके अपने साथ ले जाने वाले सामान में रख लें।

जो रोगी उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में जाना चाहते हैं उनमें हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य होना चाहिए और उन्हें स्वयं को अधिक ऊँचाई के लिए अनुकूलन का अवसर देना चाहिए अतः रोगी स्वयं को 11000 फुट तक की ऊँचाई तक सीमित रखने पर विचार कर सकते हैं या अधिक ऊँचाई पर जाने से ठीक पहले रक्ताधान अवश्य करा लें। इसके अतिरिक्त रोगी के कहीं भी यात्रा करने पर कोई भी पाबन्दी नहीं है।

विवाह और परिवार

थैलासीमिया के रोगी निश्चित रूप से विवाह कर सकते हैं और सन्तानोत्पत्ति भी कर सकते हैं। उनके बच्चों का स्वास्थ्य उनके जीवन साथी की थैलासीमिया सम्बन्धी स्थिति पर निर्भर करेगा अर्थात् क्या वह स्वस्थ है, रोग का वाहक है या स्वयं रोगी है यदि एक रोगी व्यक्ति दूसरे थैलासीमिया के रोगी व्यक्ति के साथ विवाह करता है तो उनके सभी बच्चे थैलासीमिया से प्रभावित होंगे। यदि एक रोगी थैलासीमिया-बी के वाहक व्यक्ति से विवाह करता है तो उनके 50 प्रतिशत बच्चे रोग से प्रभावित होंगे और 50 प्रतिशत बच्चे रोग के वाहक होंगे। दूसरी ओर यदि एक रोगी एक ऐसे व्यक्ति से विवाह करता है जो रोग का वाहक नहीं है तो उनके सभी बच्चे रोग के वाहक ही होंगे।

संक्षेप में-रोगी जो परामर्शित/निर्धारित उपचार का अनुपालन करते हैं वे लगभग पूरी तरह सामान्य और खुशहाल जीवन जी सकते हैं। उदाहरण के लिए साइप्रस में थैलासीमिया के 83 प्रतिशत रोगियों ने उच्च शिक्षा पूरी कर ली है जबकि 25 प्रतिशत विश्वविद्यालयों से स्नातक की उपाधि ले चुके हैं। 22 प्रतिशत रोगी विवाह कर चुके हैं। उनमें से 73 प्रतिशत के बच्चे हैं। कुछ के तो तीन या चार बच्चे हैं। साइप्रस में 79 प्रतिशत रोगी कामकाज में लगे हैं। दस्तकारी, कृषि का क्षेत्र, सेक्रेटरी और अध्यापक, नर्स, डॉक्टर, पेरामेडिकल स्टाफ के रूप में कार्य करते हैं।

थैलासीमिया का प्रसार और इसकी रोकथाम

प्रसार

आरंभ में यह माना जाता था कि थैलासीमिया भूमध्यसागरीय क्षेत्र तक सीमित एक रोग है किन्तु अब यह ज्ञात हो चुका है कि यह विश्व के अनेक भागों में व्यापक रूप से पाया जाता है। थैलासीमिया पूरे दक्षिणी यूरोप में पुर्तगाल से लेकर स्पेन तक, इटली और ग्रीस में तथा कई मध्य-यूरोपीय देशों और भूतपूर्व सोवियत संघ के कई भागों में पाया जाता है। थैलासीमिया का प्रभाव मध्य-पूर्व से लेकर ईरान, पाकिस्तान, भारत, बंगलादेश, थाईलैंड, मलेशिया और दक्षिणी चीन तथा अफ्रीका के उत्तर-तटवर्ती देशों और दक्षिणी अमरीका में भी मिलता है।

थैलासीमिया विशेष रूप से उन क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है जहाँ पहले कभी मलेरिया स्थानिक रोग रहा था या अब भी है। मलेरिया का परजीवी संक्रमण कारक होता है। यह एनाप्लीज मच्छर द्वारा फैलाया जाता है। मच्छर के काटने पर यह मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाता है और लाल रक्त कोशिकाओं पर हमला करके रोग उत्पन्न कर देता है। यह माना जाता है कि उन क्षेत्रों में जहाँ मलेरिया एक स्थानिक रोग था, मनुष्यों के जीन में अनुकूलन के लिए कुछ बदलाव आया इससे उनकी स्थिति उनसे अधिक अनुकूल हो गई जिनमें यह बदलाव नहीं आया क्योंकि जीन में आए इस बदलाव से लाल रक्त कोशिका को परिवेश में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिनके कारण परजीवी को जीवित रहने और अपनी संख्या बढ़ाने का अवसर नहीं मिला। जीन में आए इस बदलाव की परिणति B-थैलासीमिया माइनर या B-थैलासीमिया ट्रेट में हुई।

यह माना जाता है कि a-थैलासीमिया और सिकल सेल रोग की भाँति B-थैलासीमिया ट्रेट के वाहक मलेरिया से जीवित बचने में स्वस्थ व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सफल रहे। मलेरिया के तीव्र संक्रमण के कारण एक बड़ी संख्या में स्वस्थ व्यक्तियों की मृत्यु के कारण विश्व के मलेरिया से प्रभावित क्षेत्रों में B-थैलासीमिया ट्रेट के वाहकों की संख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। यद्यपि हाल के कुछ वर्षों में मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप विश्व के कई भागों में मलेरिया के प्रभाव में तेजी से कमी आई है फिर भी थैलासीमिया और हीमोग्लोबिन के अन्य गम्भीर रोगों का मुकाबला अब भी एक बड़ी चुनौती है।

आबादी के स्थानांतरण और विभिन्न मानव जातीय समूहों में अंतर्जातीय विवाहों ने थैलासीमिया को उत्तरी यूरोप सहित विश्व के लगभग सभी देशों में पहुँचा दिया है। थैलासीमिया जिन देशों में पहले नहीं था अब यह उन देशों में भी जन-स्वास्थ्य की एक बड़ी समस्या बनता जा रहा है।

विश्वस्त्र सूत्रों के अनुमान के अनुसार विश्व की जनसंख्या का 1.5 प्रतिशत लगभग 8-9 करोड़ व्यक्ति B-थैलासीमिया के वाहक हैं और 60,000 प्रभावित बच्चे प्रतिवर्ष जन्म लेते हैं। इनमें से अधिकांश विकासशील देशों में हैं। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि ये आँकड़े वास्तविकता से कहीं कम हैं। विशेष रूप से विश्व के जो भाग अत्यधिक प्रभावित हैं या जिनके अत्यधिक प्रभावित होने की संभावना है, उनके जनसंख्या-समूहों की वाहक दर (जीन आवृत्ति) के ठीक-ठीक आँकड़ें अभी तक उपलब्ध नहीं हैं। TIF के रिकॉर्ड के अनुसार पूरे विश्व में थैलासीमिया मेजर के लगभग 200,000 रोगी जीवित हैं और उपचार ले रहे हैं—इससे यह कटु-सत्य सामने आता है कि विकासशील देशों में जन्में अधिकतर रोगी बच्चों की मृत्यु बिना निदान के हो जाती है या उनका निदान ही ठीक नहीं होता या उन्हें पूरी तरह ठीक उपचार नहीं मिलता या उन्हें बिना किसी उपचार के छोड़ दिया जाता है।

नक्शे में (देखें 12 सी) थैलासीमिया से प्रभावित देशों को दर्शाया गया है। सिकल सेल और HbE/B-थैलासीमिया जैसे अन्य गम्भीर हीमोग्लोबिन रोगों से विश्व की लगभग 5 प्रतिशत जनसंख्या प्रभावित है।

रोकथाम—इटली, ग्रीस और साइप्रस जैसे देशों ने यह भली-भाँति सिद्ध कर दिया है कि थैलासीमिया रोग की रोकथाम संभव है। ये पहले देश हैं जिनमें सफल राष्ट्रीय कार्यक्रमों के द्वारा प्रभावित बच्चों के जन्म में महत्वपूर्ण कमी की गई और कहीं कहीं इसे बिल्कुल रोक दिया गया।

इसके विपरीत ब्रिटेन में, जहाँ काफी समय से रोकथाम के अच्छे कार्यक्रम उपलब्ध होते हुए भी रोकथाम की कोई राष्ट्रीय-नीति नहीं थी, प्रभावित बच्चों की संख्या में केवल 50 प्रतिशत की कमी आई है (देखें 12d)।

सर्वाधिक सफल निवारक कार्यक्रमों के मुख्य-पक्षों को अन्य प्रभावित देशों में कार्यक्रमों का आधार बनाया जा रहा है।

ये पक्ष हैं :

- * सरकार से संकल्प और वचनबद्धता प्राप्त करना
- * प्रभावशाली स्वास्थ्य-शिक्षा अभियानों के द्वारा सामान्य जनता और स्वास्थ्यकर्मियों में जागरूकता बढ़ाना
- * परीक्षणों और जन्म-पूर्व निदान के लिए प्रयोगशालाएँ स्थापित करना
- * जीन और प्रसूति संबंधी सेवाओं को उन्नत करना।

रोकथाम का महत्त्व

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अधिकतर देशों में देशव्यापी निवारक कार्यक्रमों की वार्षिक लागत एक वर्ष के दौरान जन्मे रोगियों के एक वर्ष तक उपचार की लागत के लगभग बराबर है।

रोकथाम में होने वाला वार्षिक व्यय वस्तुतः समान ही रहता है जबकि उपचार का वार्षिक व्यय प्रतिवर्ष बढ़ता जाता है (देखें चित्र A) जिससे चल रहे निवारक कार्यक्रम की व्यय-प्रभावता प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है। थैलासीमिया के उपचार के व्यय के विषय में विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुसार प्रभावित बच्चों के जन्म की संख्या को सीमित करने के लिए निवारक कार्यक्रमों के अभाव में अधिकतर देश थैलासीमिया के सभी रोगियों को उपयुक्त उपचार उपलब्ध कराने में असमर्थ होंगे। वर्तमान रोगियों के उपचार का व्यय उठा पाने के लिए एक प्रभावी निवारक कार्यक्रम का होना अनिवार्य है।

थैलासीमिया वंशानुक्रम से कैसे आता है जैसा कि प्रथम अध्याय में बताया गया है। थैलासीमिया ट्रेट वंशानुक्रम के अलिंग सूत्री अप्रभावी प्रतिरूप (ऑटोसोगल रिसेसिव पैटर्न) के द्वारा माता-पिता से बच्चों में आता है। बच्चा जब गर्भ में आता है तो माता और पिता दोनों में एक-एक B-ग्लोबिन जीन प्राप्त करता है। जब माता और पिता दोनों सामान्य या स्वस्थ B-ग्लोबिन जीन वाले होते हैं तो बच्चा दो सामान्य B-ग्लोबिन जीन प्राप्त करता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

जब माता या पिता दोनों में से कोई एक प्रभावित B-ग्लोबिन जीन का वाहक होता है और दूसरा सामान्य स्वस्थ B-ग्लोबिन जीन वाला होता है तो ऐसे माता-पिता के प्रत्येक बच्चे द्वारा वाहक माता-पिता से प्रभावित थैलासीमिया जीन प्राप्त करने की संभावना 50 प्रतिशत होती है।

इन बच्चों को

- (1) B-थैलासीमिया ट्रेट के वाहक या
- (2) B-थैलासीमिया के विषम युग्मज या
- (3) B-थैलासीमिया माइनर से प्रभावित कहा जाता है।

थैलासीमिया ट्रेट के वाहकों के विषय में

थैलासीमिया ट्रेट के वाहक, रोग से प्रभावित नहीं होते। इनमें रोग के शारीरिक या मानसिक लक्षण नहीं होते और इन्हें किसी विशेष आहार या चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। यह दशा समय के साथ किसी गम्भीर रोग का रूप नहीं ले सकती। वास्तव में इनमें से अधिकतर को तो यह भी पता नहीं होता कि वे रोग के वाहक हैं जब तक कि विशेष रूप से परीक्षण न किया जाए। हालाँकि इनमें से कुछ को थोड़ी रक्ताल्पता हो सकता है जिसका गलती से लौह की कमी से होने वाली रक्ताल्पता के रूप में निदान हो सकता है। प्रयोगशाला-परीक्षणों द्वारा सरलता से इन दोनों के बीच अंतर किया जा सकता है। गर्भवती महिला वाहकों को साधारण रक्ताल्पता हो सकती है जिसका गर्भावस्था के दौरान लौह-पूरकों द्वारा उपचार किया जा सकता है।

कहीं आप वाहक तो नहीं, यह जानना क्यों आवश्यक है?

यद्यपि थैलासीमिया ट्रेट का वाहक होने से स्वास्थ्य पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु यदि वाहक का किसी अन्य वाहक के संयोग से कोई बच्चा है तो उसके थैलासीमिया मेजर से प्रभावित होने की संभावना 25 प्रतिशत होती है।

जैसा चित्र में दिखाया गया है, जब माता और पिता दोनों वाहक हैं तो बच्चे के थैलासीमिया मेजर से प्रभावित होने की संभावना 25 प्रतिशत है और थैलासीमिया ट्रेट का वाहक होने की संभावना 50 प्रतिशत है और बच्चे के पूरी तरह अप्रभावित रहने की संभावना 25 प्रतिशत है।

अन्य असामान्य हीमोग्लोबिन और हीमोग्लोबिन विकार

वयस्कों में कई अन्य असामान्य हीमोग्लोबिन के प्रकारों का पता चला है, जो संरचना और रोग-विषयक परिणाम दोनों ही बातों में एक-दूसरे से भिन्न हैं। इन्हें संरचनात्मक हीमोग्लोबिन रूप-भेद कहा जाता है। इनमें मुख्य रूप से हीमोग्लोबिन S(HbS), हीमोग्लोबिन E(HbE), हीमोग्लोबिन C(HbC), हीमोग्लोबिन D(HbD) और हीमोग्लोबिन लेपोर (HbLepore) सम्मिलित हैं। ये वंशानुक्रम में ठीक उसी प्रकार प्राप्त होती हैं जैसे कि B-थैलासीमिया के संदर्भ में चर्चा की गई है। हालाँकि जो अपने माता और पिता दोनों ही से हीमोग्लोबिन लेपोर (HbLepore) और हीमोग्लोबिन (HbS) वंशानुक्रम से प्राप्त करते हैं केवल उन्हीं में चिकित्सा की दृष्टि से महत्वपूर्ण रोग दशाएँ पाई जाती हैं, हीमोग्लोबिन लेपोर (Hb Lepore) से B-थैलासीमिया इन्टरमीडिया और मेजर से मिलती-जुलती रोग-दशा और हीमोग्लोबिन S (HbS) से सिकल सेल रोग जो एक गंभीर हीमोग्लोबिन विकार है, और चिकित्सा परिणाम तथा उपचार दोनों ही दृष्टियों से B-थैलासीमिया मेजर से भिन्न है। माता और पिता दोनों ही से प्राप्त अन्य असामान्य हीमोग्लोबिन HbC, HbD या HbE के कारण ट्रेट्स में कोई रोग नहीं पाया जाता। तथापि हीमोग्लोबिन के ये रूप-भेद B थैलासीमिया ट्रेट से मलकर चिकित्सा की दृष्टि से महत्वपूर्ण अन्य संबंधित रक्त विकार उत्पन्न कर सकते हैं।

HbE/B-थैलासीमिया विशेषतः दक्षिण एशियाई वंशक्रम वाली जातियों जैसे कि कंबोडियन, वियतनामी और थाई जाति में सबसे अधिक पाया जाने वाला असामान्यत हीमोग्लोबिन है। यदि माता और पिता में से कोई एक B-थैलासीमिया ट्रेट का वाहक है और दूसरा HbE/B-थैलासीमिया वाले बच्चे के जन्म की 25 प्रतिशत संभावना होगी। HbE/B थैलासीमिया एक साधारण तीव्रता वाली रक्ताल्पता है जिसके लक्षण प्रायः B-थैलासीमिया इन्टरमीडिया के लक्षणों के समान होते हैं किन्तु ये थैलासीमिया मेजर के लक्षणों जितने तीव्र भी हो सकते हैं। HbE/B-थैलासीमिया की चिकित्सा और रोगविषयक परिणामों को इस पुस्तक में सम्मिलित किया गया है।

Hb लेपोर/B-थैलासीमिया

Hb लेपोर के B-थैलासीमिया के साथ संयोग की परिणति B-थैलासीमिया मेजर जैसी एक तीव्र रोगदशा में होती है और यह HbE/B-थैलासीमिया की तरह से ही वंशक्रम से प्राप्त होता है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

HbS/B-थैलासीमिया

यदि माता और पिता में से कोई एक B-थैलासीमिया ट्रेट का वाहक है और दूसरा HbS ट्रेट का वाहक है तो प्रत्येक गर्भधारण में HbS/B-थैलासीमिया वाले बच्चे के जन्म की संभावना 25 प्रतिशत होगी।

HbS सामान्यतः अफ्रीकी और भूमध्य सागरीय वंशानुक्रम वाली जातियों में पाया जाता है। रोग-दशा की तीव्रता B-जीन द्वारा उत्पादित B-ग्लोबिन की मात्रा पर निर्भर होती है। जब B-जीन द्वारा B-ग्लोबिन बिल्कुल ही नहीं होता तो यह रोग-दशा लगभग सिकल-सेल रोग के समान होती है। जब B-जीन द्वारा B-ग्लोबिन का थोड़ा उत्पादन होता है तो दशा कुछ कम तीव्र हो सकती है। इस पुस्तक में दी गई जानकारी इस रोग-दशा पर लागू नहीं होती, इस विषय में अधिक जानकारी विश्व स्वास्थ्य संगठन WHO की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

हीमोग्लोबिन रूप-भेदों के अन्य संयोजन भी वंशानुक्रम से प्राप्त हो सकते हैं जैसे कि SBHb लेपोर और HbO अरब/B ये दोनों थैलासीमिया इन्टरमीडिया से समानता रखते हैं तथा HbS/HbC, HbS/HbD पंजाब और HbS/HbO अरब। ये सब भिन्न-भिन्न तीव्रता वाले सिकल-सेल रोग से समानता रखते हैं।

a-थैलासीमिया

a-थैलासीमिया, B-थैलासीमिया से बिल्कुल भिन्न है। इस पुस्तक में दी गई जानकारी उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होती जो a-थैलासीमिया के वाहक हैं। a-थैलासीमिया के विषय में अधिक जानकारी विश्व स्वास्थ्य संगठन WHO की वेबसाइट पर उपलब्ध है। तथापि इसके प्रसार और वंशानुक्रम की कुछ आधारभूत जानकारी अगले पृष्ठ पर दी गई है।

पूरे विश्व में a-थैलासीमिया के वाहकों की संख्या 2.60 करोड़ से भी अधिक है। भारत, दक्षिण-पूर्व एशिया और अफ्रीका में इनकी संख्या सबसे अधिक और भूमध्य सागरीय क्षेत्र में किसी सीमा तक कम और उत्तरी यूरोप में अत्यंत दुर्लभ है।

B-ग्लोबिन की तुलना में a-ग्लोबिन में 4 जीन होते हैं, गुणसूत्र 16 (क्रोमोसोम-16) के प्रत्येक तन्तु पर 2 जीन होते हैं।

a-थैलासीमिया वाहक अलग-अलग प्रकार से मिलकर रक्त-विकार उत्पन्न करते हैं जो मध्यम से लेकर तीव्र तक हो सकते हैं। Hb बार्टस का हाइड्रॉक्सिफीटलस सिन्ड्रोम (देखें) यह सर्वाधिक तीव्र थैलासीमिया है तथा a-थैलासीमिया की समयुग्मज अवस्था है। इसमें चारों a-ग्लोबिन जीन निष्क्रिय होते हैं और a श्रृंखलाओं का उत्पादन बिल्कुल नहीं होता। इस दशा में तीव्र रक्ताल्पता हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जाती है। यद्यपि चिकित्सा परिणामों में व्यापक भिन्नता होते हुए भी HbH रोग से प्रभावित अधिकतर व्यक्ति स्वस्थ हैं।

HbH रोग का सबसे तीव्र रूप HbH हाइड्रॉक्सिफीटलस है। यह अत्यन्त दुर्लभ रोग है। B-थैलासीमिया की चिकित्सा प्रगति में a-थैलासीमिया का महत्त्व समयुग्मज B-थैलासीमिया से प्रभावित रोगियों में a-थैलासीमिया विशेषक की उपस्थिति कम महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि यह a और B श्रृंखलाओं के बीच असंतुलन को कम कर सकता है जिससे B-थैलासीमिया के रोग-विषयक परिणामों में कमी आ जाती है।

क्या आप वाहक हैं? पता लगाएँ

जेनेटिक परामर्श

अधिकतर मामलों में साधारण प्रयोगशाला परीक्षणों से यह पता लग जाता है कि कोई व्यक्ति थैलासीमिया विशेषक (ट्रेट) का वाहक है अथवा नहीं तथापि कोई भी प्रयोगशाला परीक्षण किए जाने से पूर्व यह आवश्यक है कि उन व्यक्तियों को जेनेटिक परामर्श मिले। उन्हें परीक्षण क्यों करवाना चाहिए और परीक्षण के परिणामों का उनके लिए क्या महत्त्व है। इस विषय में उन्हें जहाँ संभव हो, सूचना, परामर्श और मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जाना चाहिए। अन्यथा इस प्रकार की जानकारी उपलब्ध कराने का दायित्व एक अच्छे स्वास्थ्य-शिक्षा कार्यक्रम का होना चाहिए। एक जेनेटिक परामर्श-दाता को विशेष रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए, उसे रोगी की रोकथाम के महत्त्वपूर्ण पक्षों

के अतिरिक्त स्वयं रोग के विषय में भी चर्चा करने में समर्थ होना चाहिए, चर्चा में निम्नलिखित विषय शामिल हो सकते हैं :

- * परीक्षण कहाँ करवाया जाए
- * परीक्षण के परिणामों की व्याख्या कैसे की जाए
- * वाहक होने से क्या तात्पर्य है, यदि दो वाहक संतान उत्पन्न करना चाहते हैं या जो पहले ही गर्भधारण कर चुके हैं और जोखिम में है उनके लिए क्या विकल्प उपलब्ध है।
- * थैलासीमिया मेजर या अन्य हीमोग्लोबिन विकार या जेनेटिक रोगों की प्रकृति और चिकित्सा
- * एक परामर्शदाता को व्यक्तियों और दम्पतियों को जानकारी उपलब्ध करानी चाहिए और यह निर्णय उन्हीं पर छोड़ देना चाहिए कि वे इस विषय में आगे क्या करना चाहते हैं। तथा परामर्शदाता की सलाह और जोखिम वाले दम्पतियों द्वारा लिए गए निर्णय प्रायः उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक आस्थाओं से प्रभावित होते हैं। TIF के प्रकाशन “प्रिवेन्शन ऑफ थैलासीमिया एंड अदर हीमोग्लोबिन डिऑर्डर्स” वाल्यूम-1, से पाठकों को इन विषयों पर अधिक सटीक जानकारी मिल सकेगी।

किसी व्यक्ति के B-थैलासीमिया विशेषक का वाहक होने की पुष्टि के लिए प्रयोगशाला परीक्षण थैलासीमिया के लिए प्रयोगशाला परीक्षणों में सामान्य रक्त परीक्षण, जिसे कम्प्लीट ब्लड काउंट CBC कहते हैं, शामिल होता है, इसमें हीमोग्लोबिन के स्तर तथा लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या और आयतन से संबंधित अन्य नाप लिए जाते हैं। इन्हें मीन कॉर्पस्कुलर वॉल्यूम (MCV) तथा मीनकॉर्पस्कुलर हीमोग्लोबिन (MCH) कहते हैं। उदाहरण के लिए वयस्कों में 75 से कम MCV वाहक अवस्था को सूचित करता है (विकल्प से यह लौह की कमी इंगित कर सकता है, एक अन्य परीक्षण से इसकी पुष्टि की जा सकती है) बच्चों में MCV का स्तर कम हो सकता है। यह आयु के अनुसार बदलता रहता है। लाल रक्त कोशिकाओं की आकृति और उनका आकार जाँचने के लिए सूक्ष्मदर्शी से उनका परीक्षण किया जाता है। थैलासीमिया वाहक की लाल रक्त कोशिकाएँ हल्की लाल और विविध आकारों वाली होती हैं जबकि सामान्य लाल रक्त कोशिकाएँ गहरे लाल रंग की तथा आकार में गोल और अवतल होती हैं (देखें 12c)

B-थैलासीमिया माइन (विशेषक) के वाहकों और अ-वाहकों (सामान्य) के रक्त प्राचलों के मान

	अ-वाहक (सामान्य)	B-थैलासीमिया के वाहक
Hb	13-5g/dL	Hb 14-2g/dL
HCT	42%	HCT 42-5%
MCV	88-8 FL	MCV 61-2 FL
MCH	28-5 pg	MCH 20-5 pg
MCHC	32.1g/dL	MCHC 33-4 g/dL
RDW-CV	13.1%	RDW-CV 15-9%
		A ₂ 5-3%

B-थैलासीमिया ट्रेट (विशेषक) के प्रकार

	रक्ताल्पता	माइक्रोसाइटोसिस (MCV<75 +I)	HbA ₂	HbF अन्य
क्लासिकल	0-+	+	>3.5%	1-5%
Ba	0-+	+	<3.5%	5&10%
लेपोर	0-+	+	<3-5%	1&5%
			5-10%	लेपोर Hb
निष्क्रिय वाहक	0	0	<3.5%	<2%

(Proceedings from a conference MA Nov. 14, 1996)

इसके अतिरिक्त यदि अन्य प्रयोगशाला परीक्षण (जैसे कि TIBC और फेरिटिन) लौह की कमी होने का निवारण कर देते हैं, जो MCV के मान में कमी का एक कारण है तो थैलासीमिया ट्रेट की उपस्थिति की पुष्टि करने तथा इसके प्रकार का पता लगाने के लिए कुछ अतिरिक्त परीक्षण किए जाते हैं। B-ट्रेट की उपस्थिति का पता लगाने के लिए एक प्रक्रिया है जिसे हीमोग्लोबिन इलेक्ट्रोफोरेसिस कहा जाता है। इसके द्वारा HbA और HbA₂ की मात्रा नापी जाती है। HbA और HbA₂ क्रमशः वयस्क हीमोग्लोबिन के मुख्य और गौण अवयव हैं। वयस्क लाल रक्त कोशिकाओं में सामान्यतः पाए जाने वाले अन्य हीमोग्लोबिन जैसे : भ्रूण हीमोग्लोबिन HbF को भी इलेक्ट्रोफोरेसिस से नापा जा सकता है। अधिकतर केशों में यह जानने के लिए कोई व्यक्ति वाहक है अथवा नहीं ऊपर बताए गए परीक्षण पर्याप्त है।

a-थैलासीमिया ट्रेट की पहचान अपवर्जन या निगमन की प्रक्रिया से की जाती है। जिन व्यक्तियों का MCV कम हो (लौह की कमी के कारण नहीं), हीमोग्लोबिन इलेक्ट्रोफोरेसिस सामान्य हो जिसमें B-थैलासीमिया ट्रेट न पाया गया हो और वे उपयुक्त जातीय मूल के हों तो उन्हें a-थैलासीमिया का वाहक माना जाता है। कुछ परिस्थितियों में B या a-थैलासीमिया ट्रेट की उपस्थिति या अनुपस्थिति का पता लगाने के लिए DNA परीक्षण करने की भी आवश्यकता होती है। थैलासीमिया ट्रेट के लिए इस प्रकार के जीनेटिक परीक्षणों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है।

रक्त परीक्षण किसे करवाना चाहिए

थैलासीमिया की रोकथाम के महत्त्व और इस वास्तविकता को देखते हुए कि यह रोग विश्व के लगभग सभी भागों में पाया जाता है। थैलासीमिया ट्रेट की पहचान के लिए जाँच को आदर्शतः रोकथाम के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सम्मिलित कर लेना चाहिए। यह जाँच कम आयु से आरम्भ करनी चाहिए परन्तु निश्चित रूप से विवाह या गर्भधारण करने से पहले हो जानी चाहिए। और कम से कम यह जाँच तब तो अवश्य होनी चाहिए

- (1) जब कोई संबंधी a-थैलासीमिया का वाहक या रोगी हो और / अथवा
- (2) उन देशों में जहाँ यह रोग बहुत ज्यादा पाया जाता हो, या ऐसे किसी देश से लौटने पर।

सरक्तता

सरक्तता का अर्थ है रक्त का समान होना अतः उदाहरण के लिए निकट संबंधियों के बीच होने वाले विवाह को सरक्त विवाह कहा जाता है। विश्व के अनेक भागों में इस प्रकार के विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाता है और उनका प्रचलन है। तथापि माता और पिता जितने अधिक निकट के संबंधी होंगे, उनके बच्चों में थैलासीमिया जैसे जन्मजात रोगों के साथ जन्म लेने की संभावना उतनी ही अधिक होगी।

असंबंधित दम्पतियों में एक स्वस्थ बालक को जन्म देने की संभावना लगभग 98 प्रतिशत होती है। जो दम्पति सगे भाइयों या सगी बहनों की संतान होते हैं उनमें एक स्वस्थ बालक को जन्म देने की संभावना लगभग 96 प्रतिशत होती है। ऐसे दम्पतियों के माता-पिता और / अथवा दादा-दादी, नाना-नानी भी यदि निकट संबंधी हों तो उनमें एक स्वस्थ बालक को जन्म देने की संभावना लगभग 94 प्रतिशत होती है।

इसी प्रकार माता और पिता जितने दूर के संबंधी होते हैं उनमें प्रभावित बालक को जन्म देने की अतिरिक्त संभावना उतनी तेजी से घटती जाती है। असंबंधित माता-पिता से जन्म लेने वाले प्रति 1000 बालकों में से लगभग 2-3 बालकों में रिसैसिव डिसऑर्डर होता है।

संबंधित माता-पिता से जन्म लेने वाले प्रति 1000 बालकों में से 2-20 बालकों में रिसैसिव डिसऑर्डर होता है। यह इस पर निर्भर करता है कि माता-पिता कितने निकट के संबंधी हैं।

जोखिम की संभावना वाले दम्पतियों को उपलब्ध विकल्प : जन्म-पूर्व परीक्षण : यदि कोई B-थैलासीमिया की वाहक महिला बच्चा चाहती है या वह गर्भवती है और उसे अपने पति के वाहक होने या न होने की जानकारी नहीं है तो उसके पति का तुरंत परीक्षण किया जाना चाहिए कि कहीं वह भी वाहक तो नहीं है। यदि वे दोनों ही वाहक हैं तो परिवार की योजना बना सकते हैं और यदि महिला गर्भवती है तो गर्भ को जारी रखने के विषय में सोच सकते हैं। और यदि थैलासीमिया के लिए भ्रूण का परीक्षण संभव हो तो भ्रूण के प्रभावित होने पर गर्भ के समापन के विषय में निर्णय ले सकते हैं।

जोखिम की संभावना वाले दम्पति जिन विकल्पों पर विचार कर सकते हैं उनमें विच्छेद, बालक गोद लेना, गृहीत स्वस्थ शुक्राणु या अण्डे से (टेस्ट-ट्यूब बेबी) परखनली शिशु का निर्णय लेना शामिल है। अथवा माता-पिता प्रमुखतः अपने धार्मिक विश्वास के कारण बच्चों में रोग की स्थिति का पता न लगा कर गर्भ को जारी रखने का निर्णय ले सकते हैं।

थैलासीमिया के लिए भ्रूण का परीक्षण

गर्भस्थ शिशु थैलासीमिया से प्रभावित है अथवा नहीं इसका पता लगाने के लिए तीन प्रकार के परीक्षण उपलब्ध हैं।

(1) एमनिओसेन्टेसिस

एमनिओसेन्टेसिस गर्भधारण के लगभग 15 सप्ताह बाद गर्भ की दूसरी तिमाही (18-22 सप्ताह) में किया जाता है।

कइस परीक्षण में एक प्रसूति-विशेषज्ञ द्वारा अल्ट्रासाउंड के नियंत्रण में एक पतली सुई महिला के पेट में से गर्भाशय में डाल कर 20-30 मि.ली. एमनिऑटिक तरल निकाला जाता है। तत्पश्चात उस तरल में मौजूद भ्रूण कोशिकाओं (गर्भस्थ शिशु की कोशिकाओं) का प्रयोगशाला में विश्लेषण किया जाता है। जिससे यह पता लग सके कि गर्भस्थ शिशु थैलासीमिया से प्रभावित है अथवा नहीं।

इस परीक्षण का प्रयोग गर्भास्वथा की काफी बाद की स्थिति में किया जाता है। इसमें गर्भवाती महिला को कोई विशेष खतरा नहीं होता। तथापि इसमें परीक्षण के बाद कुछ दिनों से लेकर कुछ सप्ताहों तक गर्भपात की संभावना रहती है।

(2) कोर्डोसेन्टेसिस

इस परीक्षण में अल्ट्रासाउंड के नियंत्रण में एक पतली सुई महिला के पेट में से भ्रूण की नाभि-रज्जु में डालकर लगभग 2-3 मि.ली. रक्त निकाला जाता है और प्रयोगशाला में भ्रूण रक्त को पृथक्कर लिया जाता है। अधिकतर मामलों में बड़ी कुशलता पूर्वक पहले ही प्रयास में 100 प्रतिशत शुद्ध भ्रूण कोशिकाएँ प्राप्त कर ली जाती हैं। शुद्ध भ्रूण रक्त पाने में असफलता के कारण हैं : गर्भ की आरंभिक

अवस्था - 18 सप्ताह से कम, गर्भवती महिला का मोटापा और पोस्टेरियर प्लैसेंटा। कम अवधि का गर्भ, कोर्डोसेन्टोसिस में होने वाली गम्भीर जटिलताओं का सबसे मुख्य महत्वपूर्ण कारण है।

जेल इलेक्ट्रोसिस द्वारा ग्लोबिन श्रृंखलाओं का पृथक्करण प्रयोगशाला परीक्षण की एक सामान्य विधि है। मॉलीक्यूलर विधि से प्रारम्भिक अवधि में स्पष्ट निदान ने लगभग पूरी तरह कोर्डोसेन्टोसिस का स्थान ले लिया है। कोर्डोसेन्टोसिस अब प्रमुखतः उन्हीं गर्भवती महिलाओं में की जाती है जो परीक्षण के लिए देर में आती हैं या जिनमें CVS अनिर्णायक रहता है और ब जोखिम वाले दम्पतियों के पूर्व परीक्षणों के परिणाम उपलब्ध नहीं होते।

(3) कोरियोनिक विलस सैम्पलिंग CVS

CVS एमनियेसेन्टेसिस से कुछ पहले किया जा सकता है। इसे गर्भ के 10-11 सप्ताहों में कर सकते हैं।

इसमें अल्ट्रासाउंड के नियंत्रण में एक प्रसूति-विशेषज्ञ द्वारा कोरियोनिक विली का एक छोटा-सा सैंपल लिया जाता है—कोरियो विली वे कोशिकाएँ होती हैं जिनमें वही जेनेटिक सूचनाएँ होती हैं जो भ्रूण में होती हैं और यही कोशिकाएँ अंततः प्लैसेन्टा बनाती हैं। ये कोशिकाएँ या तो महिला के पेट में से पतली सुई डालकर (ट्रॉसएब्डॉमिनल) या योनि के जरिए एक पतली नली डालकर निकाली जाती हैं। तत्पश्चात् इन कोशिकाओं का विश्लेषण करके निदान किया जाता है। एमनियोसेन्टोसिस की तरह CVS में भी महिला को कोई विशेष खाता नहीं होता। तथापि इसमें भी गर्भपात की कुछ संभावना अवश्य होती है। यदि गर्भपात होता है तो यह पता लगाना कठिन है कि यह CVS के कारण हुआ है क्योंकि गर्भ के लगभग 12 सप्ताह में कई बार गर्भपात अपने आप भी हो जाते हैं।

यदि CVS गर्भ की बहुत शुरु की अवस्था में अर्थात् पिछले मासिक रजः स्राव से 8 सप्ताह से पहले किया जाए तो शिशु के अंगों के विकृत होने की संभावना बहुत बढ़ जाती है। तथापि यदि CVS पिछले मासिक से 9वां सप्ताह आरम्भ होने के बाद किया जाए तो किसी प्रकार की विकृति की संभावना में वृद्धि का कोई प्रमाण नहीं है। इसीलिए प्रायः यह परीक्षण पिछले मासिक से 10वां सप्ताह शुरू होने के बाद किया जाता है।

जेनेटिक परीक्षण किस प्रकार कार्य करते हैं?

एमनियोसेन्टेसिस और CVS दोनों ही DNA पर आधारित परीक्षण हैं। इनमें माता-पिता में जेनेटिक असामान्यताओं (म्यूटेशन) की उपस्थिति या अनुपस्थिति का पता लगाया जाता है। यह वंशानुपात रोगों के निदान की सर्वाधिक शुद्ध विधियाँ हैं तथापि अन्य परीक्षणों की भाँति इनमें भी त्रुटि की संभावना है। हालाँकि यह त्रुटि अति सूक्ष्म होती है।

किसी भी व्यक्ति के वंशानुपात अभिलक्षण और हीमोग्लोबिन उसके जीन के अनुसार होते हैं, जीन DNA से बनता है। शरीर के प्रत्येक ऊतक और शिशु के प्लसेन्टा में भी व्यक्ति का पूरा DNA पैटर्न मौजूद होता है। उदाहरण के लिए CVS में वैज्ञानिक प्रयोगशाला में कोरियोनिक विली से ली गई कोशिकाओं के DNA में मौजूद हीमोग्लोबिन जीन का अध्ययन करते हैं। इस अध्ययन से यह पता लगता है कि शिशु सामान्य होगा या थैलासीमिया का वाहक होगा। यह थैलासीमिया मेजर से प्रभावित होगा। सैम्पल के विश्लेषण के प्रायः एक सप्ताह लगता है।

गर्भ का समापन

यदि परीक्षण से पता चले कि शिशु रोग ग्रस्त है तो दम्पति गर्भ के समापन का निर्णय ले सकते हैं। इन मामलों में जेनेटिक काउंसलर और प्रसूति विशेषज्ञ की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इस अवस्था में भी प्रभावित बच्चे के जीवनपर्यंत उपचार के दायित्व को स्वीकार करते हुए दम्पतियों ने गर्भ को जारी रखने के निर्णय लिए हैं और यदि गर्भ के समापन का निश्चय किया जाता है तो गर्भ की अवस्था के अनुसार यह दो विधियों में से किसी एक विधि द्वारा किया जा सकता है।

प्रारंभिक अवस्था में गर्भ का समापन

यदि किसी महिला का गर्भ 14 सप्ताह से कम है तो गर्भ का प्रारम्भिक अवस्था में समापन किया जा सकता है। दम्पति को यह जानकारी दे देनी चाहिए कि गर्भ के समापन से महिला द्वारा एक और संतान उत्पन्न करने की संभावना कम नहीं होगी। हालाँकि यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि जोखिम वाले दम्पतियों को प्रत्येक गभ्र धारण से रोग-प्रभावित बच्चे के जन्म की संभावना उतनी ही रहती है। यदि दम्पति यह जानना चाहें कि बाद के किसी गर्भस्थ शिशु को थैलासीमिया है या नहीं तो इसके लिए जन्म पूर्व परीक्षण और निदान फिर से करवाना पड़ेगा।

विलंबित गर्भ समापन

14 सप्ताह से ज्यादा के गर्भ का समापन करने की विधि में महिला के गर्भाशय में हार्मोन (प्रोस्टाग्लैन्डिन) डालकर प्रसव प्रेरित किया जाता है। प्रसव में कुछ घंटे लग सकते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में गभ्रसमापन की प्रक्रिया की अपेक्षा यह प्रक्रिया महिला के लिए कहीं अधिक कष्टप्रद होती है। इस प्रकार गर्भ-समापन से भी महिला की गर्भधारण की क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अन्य विधियाँ

जन्म पूर्व निदान और गर्भ का समापन विवाद के विषय हैं। दुर्भाग्यवश रोकथाम केवल वाहकों की पहचान से नहीं हो सकती और जन्म पूर्व निदान और गर्भ के समापन के बिना वाहकों की पहचान से भी कोई लाभ नहीं होगा। रोकथाम के अन्य उपाय विकसित किए जा रहे हैं जैसे कि माता के रक्त में भ्रूण की कोशिकाओं का विश्लेषण। तथापि इसमें भी कमियाँ हैं यह अभी तक जन्मपूर्व निदान का विश्वसनीय विकल्प नहीं बन सका है। रोपण-पूर्व जैनेटिक निदान (PGD) एक अन्य विधि है। इसमें किसी महिला वाहक से एक स्वस्थ अंडा लेने और उसे प्रयोगशाला में रोपित करने के लिए DNA तकनीक का उपयोग किया जाता है। जिन समुदायों में गर्भ का समापन का विरोध है उनमें PGD अधिक स्वीकार्य सिद्ध हो सकता है और जब यह विधि कुछ कम खर्चीली और तकनीकी रूप से अधिक सरल हो जाएगी तो इसका उपयोग अधिक व्यापक रूप से होने लगेगा।

उपयोगी जानकारी-1

1. **थैलासीमिया में आहार** - भोजन से लौह के अवशोषण को कम करना। थैलासीमिया में लौह की अधिकता यद्यपि अधिकांशतः रक्ताधान के कारण होती है। पर आहार से होने वाला लौह का अधिक अवशोषण भी महत्वपूर्ण होता है। हमारे आहार में से लौह की बहुत थोड़ी सी मात्रा ही अवशोषित होती है, जब रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा कम होती है तो अवशोषित लौह की मात्रा अधिक होती है। जिन व्यक्तियों में हीमोग्लोबिन की मात्रा कम होती है जैसा कि थैलासीमिया इन्टरमीडिया या थैलासीमिया मेजर के रोगी जो रक्ताधान नियंत्रित रूप से नहीं कराते। वह अपने आहार में ऐसा परिवर्तन कर सकते हैं जिससे न केवल उनके आहार में कुल लौह की मात्रा कम हो जाए, बल्कि उनके शरीर में भी लौह की मात्रा कम रहे। आहार में लौह दो प्रकार का होता है। लौह जो लाल मांस में होता है (मीट आयरन) और आहार में सामान्यतः पाया जाने वाला, लौह (नान मीट आयरन)।

2. **मीट आयरन** - मीट आयरन लाल माँस जैसे कि गाय, भेड़ और सूअर के माँस और चिकन के लाल माँस में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह समुद्री खाद्य (सी-फूड) जैसे कि सादीन, घोंघा और सीप में भी पाया जाता है जिगर में मीट आयरन भरपूर मात्रा में होता है। कलेजी इन सबकी मात्रा को कम करे और सम्भवतः माँस के स्थान पर सोया प्रोटीन लें। हालाँकि मीट चिकन और मछली को पूरी तरह अपने आहार से निकाल देना भी अच्छा विकल्प नहीं है क्योंकि इनमें अन्य पोषक तत्व भी होते हैं। विशेषतया बच्चों के लिए आवश्यक पोषक तत्व।

चिकन लेना हो तो इसके लाल माँस की बजाय सफेद भाग को ले लें। इसमें आयरन कम होता है। लाल मीट युक्त भोजन के बाद औसत 35 प्रतिशत आयरन हमारे शरीर में सोख लिया जाता है। हालाँकि यह मात्रा 10-40 प्रतिशत के बीच कुछ भी हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर है कि भोजन में दूध या दूध से बने पदार्थ सम्मिलित हैं या नहीं। दूध, पनीर, दही और क्रीम में मौजूद कैल्शियम मीट आयरन के अवशोषण को कम कर देता है। मीट युक्त आहार के साथ एक गिलास दूध का सेवन करें और मीट पकाने में भी दूध का प्रयोग करें। मीट के विविध व्यंजनों को पकाने में दूध, दही, क्रीम आदि का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है।

प्रतिदिन कम से कम दो गिलास दूध अवश्य पीना चाहिए। खासतौर पर इसलिए कि यह हड्डियों को भुरभुरा होने से बचाता है। इस विषय में आगे भी चर्चा की जाएगी यदि आप अपने भार को लेकर चिन्तित हैं तो मलाई उतारा हुआ दूध ले सकते हैं क्योंकि यह भी कैल्शियम से उतना ही भरपूर होता है जितना कि सम्पूर्ण दूध।

3. **नान-मीट आयरन** - आहार में प्रचुर मात्रा में मिलता है यह अण्डों, चॉकलेट, अनाज, सब्जियों, फलों, जड़ वाली सब्जियों, फलियों और मूँग-मूसर दालों में पाया जाता है। कुछ देशों में खाद्य सामग्री जैसे कि नाश्ते की वस्तुएँ, गेहूँ का आटा, डबल रोटी आदि में आयरन की अतिरिक्त मात्रा मिलाई जाती है। हमारे शरीर में नान-मीट आयरन का अवशोषण मीट आयरन की अपेक्षा काफी कम होता है किन्तु आहार के संयोजन के अनुसार यह बीस गुना तक हो सकता है जो खाद्य पदार्थ आयरन के अवशोषण को कम कर देते हैं, वे हैं-

(1) अनाज

(2) दुग्ध उत्पाद - जो आयरन के अवशोषण को बढ़ा देते हैं-वे हैं (1) विटामिन सी से भरपूर फल-सब्जियाँ, (2) मीट, मछली, घोंघा और अण्डे

(3) अचार, चटनी, सिरका और शराब/अल्कोहल नान-मीट आयरन में कमी कर पाना बहुत कठिन है क्योंकि यह ज्यादातर खाद्य पदार्थों में मौजूद होता है। हालाँकि आहार में इस प्रकार बदलाव किया जा सकता है कि लौह का अवशोषण कम करने वाले खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में लिए जाएँ और इसका अवशोषण बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थ कम लिए जाएँ। भोजन जो नान-मीट आयरन के अवशोषण को कम करता है-

(1) **अनाज** - गेहूँ का चोकर, मक्का, जई, चावल और सोया हमारे शरीर में अवशोषित होने वाले लौह की मात्रा को कम करते हैं और

विटामिन सी का प्रभाव होने से रोकते हैं। विटामिन सी की भरपूर मात्रा वाले भोजन से लौह का अवशोषण अधिक होता है। अपने आहार में अनाज ज्यादा से ज्यादा लें तो अच्छा है किन्तु यह ध्यान रखें इसके साथ विटामिन सी की अधिकता वाला भोजन न लें जैसे सन्तरे का रस। अनाज और दूध एक साथ लेने की कोशिश करें। जैसे कि पनीर, सैन्डविच, फ्रैन्च टोस्ट, काकरोनी चीज़, अनाज और दूध। ब्रिटेन में सभी प्रकार के आटे को, चोकर सहित आटे को छोड़कर कानूनी तौर पर आयरन से पुष्ट किया जाना अनिवार्य है परन्तु नाश्ते में प्रयोग होने वाले अनाज का लौह पुष्टिकरण स्वेच्छिक है इसलिए चोकर युक्त, आयरन रहित गेहूँ का आटा और ब्रेड का चुनाव करना ठीक होगा। इसके लिए अपने पसंदीदा नाश्ते के लेवल को ध्यान से देखें। अपुष्टिकृत स्वास्थ्य आहार को दुकानों में नाश्ते में दलिया, जई और कुछ अनाज शामिल होते हैं। फिर भी यह निश्चित कर लें कि आप अपुष्टिकृत आहार ही ले रहे हैं। अन्य देशों में आटे और नाश्ते के आहार का पुष्टिकृत होना आवश्यक नहीं है। सोया, प्रोटीन भी शरीर में आयरन के अवशोषण को कम कर देती है। सोया प्रोटीन भी कई प्रकार के व्यंजनों को बनाने में खूब काम आ सकती है और मसाले के प्रयोग से इसके स्वाद को उभारा जा सकता है।

(2) चाय, काफी और मसाले - चाय, काफी और कुछ मसाले (जैसे औरंगैनो) आयरन के अवशोषण को कम कर देते हैं। प्रतिदिन खूब चाय और काफी पिएं। यदि आप चाय और काफी दूध के साथ लें तो और भी अच्छा रहेगा। चाय एंटीऑक्सीडेंट्स का भी एक अच्छा स्रोत है जिनके बारे में आगे चर्चा की जाएगी।

(3) डेरी उत्पाद - दूध, पनीर और दही आपके शरीर में आयरन के अवशोषण को कम कर देते हैं। इन सबमें कैल्शियम होता है जो हड्डियों के भुरभुरेपन को रोकने के लिए भी आवश्यक होता है इसलिए अपने आहार में आप जितने अधिक दुग्ध-उत्पाद शामिल कर सकें अच्छा है, कम चिकनाई वाले दूध और पनीर में भी कैल्शियम में उतनी ही अधिक मात्रा होती है इसलिए यदि आप अपने भार को लेकर चिंतित हैं तब भी यह बेहतर है कम से कम आधा लीटर दूध रोज पिएं।

वह भोजन जो नान-मीट आयरन का अवशोषण बढ़ाता है—

(1) विटामिन सी - यह विटामिन फलों के रस और सब्जियों में पाया जाता है इसलिए सुबह के नाश्ते या टोस्ट वगैरह के साथ सन्तरे या अन्य फलों का रस नहीं लेना चाहिए। इसके स्थान पर एक कप चाय या काफी लेना बेहतर रहेगा क्योंकि यह आयरन के अवशोषण को कम कर देते हैं या फिर एक गिलास दूध ले लें। बीयर से भी आयरन का अवशोषण बढ़ जाता है इसलिए भोजन के साथ इसके अक्सर प्रयोग से बचें परन्तु कुछ सूखे मेवों के साथ इसे आप किसी समय भी ले सकते हैं। फल और फलों का रस हालांकि एंटीऑक्सीडेंट के अच्छे स्रोत हैं ओर इन्हें अकेले ही स्नैक के रूप में लेना चाहिए। उबली सब्जियों में विटामिन सी काफी कम होता है। उबालने पर यह विटामिन पानी में चला जाता है।

(2) मीट - पोल्टरी, फिश और समुद्री खाद्य

मीट, पोल्टरी, फिया और समुद्री खाद्यों में न केवल मीट आयरन प्रचुर मात्रा में होता है बल्कि यह आपके आहार में से नान मीट आयरन के अवशोषण में भी सहायता करते हैं। फिर भी इन्हें अपने आहार में से पूरी तरह निकाल देना समझदारी नहीं होगी क्योंकि इसमें अन्य आवश्यक पोषक तत्व भी होते हैं। विशेषतः बच्चों और किशोरों के लिए आवश्यक पोषक तत्व।

(3) अचार, सिरका, चटनी वगैरह

प्याज का अचार शलजम और गाजर के साथ-साथ फरमेन्टड सोया से बने खाद्य पदार्थ सोया सॉस आदि आयरन के अवशोषण को बढ़ाते हैं और जब अचार वाली सब्जियाँ ब्रेड और राई वाले भोजन के साथ ली जाती हैं तो अवशोषित आयरन की मात्रा और भी बढ़ जाती है। सामान्यतः अनाज (मक्का, चोकर वाला आटा और फलियाँ) और जड़ वाली सब्जियाँ थोड़ा मीट मछली या विटामिन सी युक्त खाद्य पदार्थ कम आयरन वाले आहार में आते हैं। सीमित आयरन आहार में अनाज जड़ वाली सब्जियाँ, थोड़ी मात्रा में विटामिन सी युक्त खाद्य पदार्थ और मीट हो सकता है। उच्च आयरन आहार में मीट, पोल्टरी और मछली प्रचुर मात्रा में शामिल होती है। इनमें विटामिन सी की अधिक मात्रा वाला भोजन जैसे कि खट्टे फल और कुछ सब्जियाँ भी आती हैं। उच्च आयरन वाले आहार को सीमित आयरन वाले आहार में बदला जा सकता है। यदि आयरन का अवशोषण कम करने वाले भोजन जैसे कि डेरी उत्पाद, अनाज, फलियाँ, काफी और चाय का नियमित सेवन किया जाए।

भोजन में एंटीऑक्सीडेंट - एंटीऑक्सीडेंट किसी भी भोजन का एक आवश्यक अंग होते हैं जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है। यह ऑक्सीकरण से होने वाली क्षति को रोकते हैं। ऐसा करके वे कैंसर और 'कोरोनरी आर्टरी डिस्जीज' की रोकथाम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

थैलासीमिया में शरीर में आयरन की अधिकता के कारण ऑक्सीकरण के द्वारा क्षति की संभावना अधिक रहती है। इस अनुच्छेद में लेखक द्वारा चार मुख्य एंटीऑक्सीडेंट-विटामिन ई, विटामिन सी, कैरोटिनाइड एंड फ्लेवोनाइड की चर्चा पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा।

(1) विटामिन ई - विटामिन ई सबसे महत्वपूर्ण आहारीय एंटी आक्सीडेन्ट है। कई अध्ययनों से यह पता चला है कि थैलासीमिया के रोगों के रक्त में विटामिन ई की मात्रा उनकी अपेक्षा कम होती है जिन्हें थैलासीमिया नहीं होता। इसका कारण या तो इनके द्वारा आहार में विटामिन ई का कम मात्रा में लिया जाना या फिर इनकी विटामिन ई की आवश्यकता का अधिक होना हो सकता है कई अध्ययनों में जब विटामिन ई को पूरक के रूप में दिया गया तो रक्त में विटामिन ई के स्तर में वृद्धि हुई हालांकि यदि आपके चिकित्सक या आहार विशेषज्ञ विटामिन ई का पूरक लेने का परामर्श भी दें तब भी शरीर में किसी भी विटामिन को पहुँचाने का सबसे अच्छा तरीका आहार ही है। विटामिन ई चिकनाई में घुलने वाला विटामिन है। इसका अर्थ यह है कि यह उस आहार में होता है जिसमें चिकनाई की मात्रा अधिक होती है। विटामिन ई का सर्वोत्तम स्रोत वनस्पति तेल हैं (जैतून का तेल, सूरजमुखी का तेल, पॉम आयल, सोयबीन का तेल) जैतून का तेल का प्रयोग सबसे अच्छा है क्योंकि इसमें पाई जाने वाली वसा हृदय रोग से बचाने में सहायक हो सकती है। भूमध्यसागरीय देशों में जहाँ जैतून का तेल खूब प्रयोग किया जाता है। (ग्रीस, पुर्तगाल, स्पेन, इटली) वहाँ हृदय रोग उत्तरी यूरोप की अपेक्षा कम हैं फिर भी यह ध्यान रहे कि तलने की प्रक्रिया में यह विटामिन धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है इसलिए जैतून के तेल का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए इसे भोजन पकाते समय अन्त में डालें या फिर भोजन पकाने के बाद ड्रेसिंग की तरह प्रयोग करें जैसे नींबू के साथ जैतून के तेल को मिश्रण को मछली, चिकन, उबली सब्जियों और सलाद के लिए स्वादिष्ट ड्रेसिंग की तरह प्रयोग किया जा सकता है। यदि आप इसे ड्रेसिंग की तरह प्रयोग करना चाहते हैं और आपको इसकी तेज गन्ध पसन्द है तो इसे कच्चा प्रयोग करें और यदि आप इसे खाना पकाने और केक आदि बनाने के लिए प्रयोग करना चाहते हैं तो रिफाइन्ड तेल आजमाएँ। घी में भी विटामिन ई होता है पर जैतून के तेल के और भी स्वास्थ्य संबंधी लाभ होने के कारण आप भोजन पकाने में इसी का प्रयोग करना पसन्द करेंगे।

विटामिन ई के अन्य स्रोत हैं डेरी उत्पाद, अनाज, सूखे मेवे, अण्डे और मीट, डेरी उत्पादों का आहार में समावेश करना केवल इसलिए ही अच्छा नहीं है कि उनमें विटामिन ई होता है बल्कि इसलिए भी कि वे हमारे भोजन से शरीर में आयरन के अवशोषण में बाधा डालते हैं और इसलिए भी कि इनमें काफी मात्रा में कैल्शियम होता है जो हड्डियों को भुरभुरा होने (आस्टियोपोरोसिस) से रोकने में सहायता करता है। आप भोजन पकाने में दूध का प्रयोग कर सकते हैं या भोजन के साथ एक गिलास दूध ले सकते हैं। चिकनाई रहित दूध में चिकनाई युक्त दूध की अपेक्षा विटामिन ई कम होता है। जबकि कैल्शियम की मात्रा कम नहीं होती।

(2) विटामिन सी - विटामिन सी नान-मीट आयरन के अवशोषण को बढ़ता है। हालांकि विटामिन सी एक बहुत शक्तिशाली एंटीऑक्सीडन्ट है। फिर भी विटामिन सी युक्त बहुत से खाद्य पदार्थों का उच्च नान मीट आयरन वाले खाद्य पदार्थों के साथ सेवन सीमित मात्रा में करना चाहिए। यह विशेषतः थैलासीमिया इन्टरमीडिया के रोगियों के लिए महत्वपूर्ण है जिन्हें नियमित रूप से रक्त नहीं दिया जाता।

याद रखें कि नान मीट आयरन आहार में व्यापक रूप से उपलब्ध होता है। यह अण्डे चॉकलेट, अनाज, सब्जियाँ, फल, कन्द (आलू आदि) फलियाँ और मसूर आदि में पाया जाता है। ब्रिटेन में कई खाद्य पदार्थों को अतिरिक्त आयरन से पुष्ट कर दिया जाता है जैसे कि नाश्ते के अनाज, गोहूँ का आटा और ब्रेड हालांकि अन्य देशों में यह अनिवार्य नहीं है।

विटामिन सी मुख्य रूप से फलों के रस और सब्जियों में पाया जाता है। यदि आप फल या फलों का रस लेना चाहें तो इन्हें किसी अन्य खाद्य पदार्थ के साथ न लें, दो खानों के बीच के अन्तराल में लें। खाने के साथ या फौरन बाद में न लें। स्वास्थ्य विशेषज्ञ लोगों को दिन में फल और सब्जियों का पाँच खुराक लेनक की सलाह देते हैं। एक खुराक से तात्पर्य है फ्रूट जूस का एक गिलास, एक फल जैसे सेब, नाशपाती, केला, सन्तरा, आधा चकोतरा, एक टमाटर, एक परोस सब्जी, थोड़ा सलाद विटामिन सी पानी में घुलनशील है इसलिए यदि सब्जियों को उबाला जाए तो यह घुलकर पानी में आ जाती है। थोड़ी भाप देकर पकाने से विटामिन सी सुरक्षित रहती है। इन सब्जियों के साथ जैतून के तेल और नींबू को मिलाकर बहुत स्वादिष्ट स्नैक और हल्के भोजन के रूप में लिया जा सकता है। विटामिन ई और विटामिन सी एक साथ लेने पर अधिक लाभ होता है। अतः सब्जियों को जैतून के तेल के प्रयोग अधिक से लाभकारी बनाएँ।

(3) कैरोटिनाइड्स - आहार में सामान्यतः गाजर, पीले स्कैश, मक्का, टमाटर, पपीता, सन्तरा और गहरे हरे रंग की सब्जियों में पाया जाता है पर इनमें से ज्यादातर खाद्य पदार्थों में विटामिन सी की मात्रा अधिक होती है इसीलिए इनके सेवन में भी ऊपर बताई गई सावधानी आवश्यक है। यह ध्यान दिलाना भी आवश्यक है कि आहार में से कैरोटिनाइड का अवशोषण कहीं अधिक होता है। यदि भोजन में चिकनाई या तेल हो इसलिए जैतून का तेल जितना डालें अच्छा है। अधिक तापमान पर कैरोटिनाइड नष्ट हो सकते हैं इसलिए भोजन मन्दी आग पर पकाएँ और हो सके तो कम समय तक पकाएँ

फ्लेविनाइड्स - यह चाय, रेड-वाइन, फलों और सब्जियों में पाए जाते हैं। भोजन के साथ रेड-वाइन लेने का इससे अच्छा कारण और क्या हो सकता है और यदि अवसर इसके लिए उपयुक्त न हो तो भोजन के साथ एक कप चाय से भी काम चल सकता है। चाय से आपको बहुत अधिक एंटीऑक्सीडेन्ट्स तो मिलेंगे ही साथ-साथ यह आपके भोजन से आयरन के अवशोषण को भी कम करेगी। खासतौर

पर यदि आप इसमें दूध भी डाल लेते हैं प्रतिदिन चाय के कई प्याले पिएँ। ध्यान रहे कि शरीर में पानी की मात्रा को ठीक रखने के लिए रोज आठ गिलास तरल पदार्थ लेने की आवश्यकता होती है।

सारांश - विटामिन ई मुख्य रूप से वनस्पति तेलों में पाया जाता है जैसे कि जैतून का तेल और सूरजमुखी का तेल। जैतून के तेल का सेवन सबसे अच्छा है क्योंकि यह हृदय रोगों से रक्षा करने में सहायता करता है। इसे भोजन पकाने की अन्तिम अवस्था में या भोजन पकाने के बाद डालें या कच्ची सब्जियों पर डालकर सेवन करें क्योंकि गर्म करने से विटामिन सी नष्ट हो जाता है। विटामिन सी फलों और सब्जियों में पाया जाता है। यदि आपको थैलासीमिया इन्टरमीडिया है और आपको रक्त नहीं चढ़ाया जा रहा है तो अधिक नान मीट आयरन वाले भोजन के साथ इनका सेवन अधिक न करें। आप दो खानों के बीच के अन्तराल में फल और सब्जियाँ ले सकते हैं। सब्जियों पर जैतून का तेल डालकर खाएँ क्योंकि विटामिन सी और विटामिन डी एक साथ अधिक लाभकारी होते हैं।

* **कैरोटिनाइट** - गाजर, पीले स्कैश, टमाटर, मक्का, पपीता, सन्तरा और गहरे हरे रंग की सब्जियों में पाया जाता है क्योंकि इन खाद्य पदार्थों में विटामिन सी की मात्रा भी अधिक होती है, इसलिए ऊपर बताई गई सावधानी आवश्यक है। यानि जैतून के तेल का भरपूर प्रयोग।

* चाय और लाल वाइन में फ्लेविनाइड्स और एंटीऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं। और चाय आयरन के अवशोषण में कमी करती है।

उपयोगी जानकारी-2

T_2 द्वारा हृदय में लौह की मात्रा मापी जाती है।

T_2 समय का माप है जो किसी ऊतक में लौह की मात्रा को प्रदर्शित करता है। T_2 माप एक सामान्य MRI machine पर लिया जाता है। MRI machine एक शक्तिशाली मैग्नेटिक और रेडियो तरंग द्वारा शरीर के ऊतकों का चित्र लेती है। MRI machine शरीर के विभिन्न भागों के मैग्नेटिक गुणों में अन्तर की पहचान करके इन्हें चित्रों में परिवर्तित कर देती है जिनका प्रयोग चिकित्सकों द्वारा विविध रोगों के निदान में किया जाता है। लौह की अधिकता से ऊतकों के मैग्नेटिक गुणों में बदलाव आ जाता है जिसके कारण T_2 का माप कम हो जाता है। हृदय का T_2 माप महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह देखा गया है जिन रोगियों के हृदय का T_2 माप 20 मिली-सेकण्ड से कम होता है उन्हें लौह की अधिकता से सम्बन्धित हृदय की समस्याओं की संभावना उन लोगों से अधिक होती है जिनका T_2 माप 20 मिली-सेकण्ड से अधिक होता है। T_2 जाँच में एक बन्द कमरे में MRI machine द्वारा 45 मिनट तक रोगी का Scan किया जाता है। रोगी को एक गद्देदार मेज पर लिटा दिया जाता है और उसके हृदय की गति को मॉनिटर करने के लिए उसकी छाती पर एक विशेष प्रकार के बिजली के तार लगा दिए जाते हैं।

रोगी के सिर पर माइक्रोफोन युक्त एक हैड-सेट लगा दिया जाता है ताकि वह तकनीशियन के साथ बात कर सके। मेज को धीरे-धीरे MRI machine के अन्दर ले जाया जाता है ताकि रोगी का पूरा शरीर मशीन की टनल के अन्दर चला जाए। MRI machine का आकार एक बड़े डोनट की तरह होता है जिसके बीच में एक टनल जैसी बनी होती है। MRI machine स्कैन के दौरान रोगी को बिल्कुल शान्त लेटे रहना चाहिए और माप लेते समय थोड़ी-थोड़ी देर के लिए साँस रोकने की हिदायत को ध्यान से सुनना चाहिए। माप लिए जाते समय MRI machine से झन-झन या खट-खट जैसी ऊँची आवाजें आती हैं। रोगी द्वारा लगाया हैड-सेट इन आवाजों से कानों को सुरक्षा प्रदान करता है। यह जाँच पूरी तरह से बाहरी और पीड़ा रहित है। इसके अतिरिक्त जबकि T_2 माप लेते समय MRI स्पन्दन करते हुए हृदय के चित्र लेता है। तो उसके द्वारा हृदय की कार्य प्रणाली का मूल्यांकन भी किया जा सकता है। MRI द्वारा लिए गए हृदय की कार्य प्रणाली के माप सामान्य अल्ट्रासाउंड द्वारा लिए गए मापों से अधिक शुद्ध होते हैं। MRI द्वारा दाएँ वैन्ट्रिकल के आकार और कार्य को भी मापा जा सकता है। दायाँ वैन्ट्रिकल हृदय का दायाँ चैम्बर है जो रक्त को फेफड़ों में पम्प करता है। थैलासीमिया के रोगियों में पल्मोनरी हाइपरटेन्शन (फेफड़ों पर अधिक दबाव) होने की सम्भावना होती है जिससे हृदय के बाएँ वैन्ट्रिकल का आकार बढ़ सकता है जिसके परिणामस्वरूप रक्त पम्प करने की इसकी क्षमता में कमी आ सकती है। इस कार्य में लगे वैज्ञानिक इन सभी रोग विषयक प्रेक्षणों से प्राप्त सूचनाओं की पुष्टि करने के कार्य में लगे हुए हैं और TIF तथा अमरीका की NIH आजकल इन प्रयासों में सहयोग दे रही है।